भारतीय इतिहास का

भौगोलिक आधार

लेखक

प्रो० जयचंद्र विद्यालङ्कार

प्रकाशक

हिन्दी भवन, लाहौर

[प्र]थम संस्करण] वैशाख १९८२ [मूल्य ॥।)

प्रकाशक
हिन्दी भवन, लाहौर।



मुद्रक
आदर्श प्रेस, आग

समर्पण

इन व्याख्यानों को सुनते समय सदा जिसके मस्तक पर
चिन्ता की रेखा दिखाई देती थी,
जिसके विचारपूर्ण प्रश्नों के कारण मुझे अनेक बार
गहरा सोचने का आनन्द मिला है,
जिसकी याद इन लेखों और इनके परिचय को लिखने समय
अनेक बार मेरे मन को निक्षिप्त करती रही है,
उसी प्रिय "अभिलाषी" की
वात्सल्य पूर्ण स्मृति में—

विषय—सूची

परिचय ।

"भारतवर्ष" नाम की सत्ता का जब से लेखक को कुछ आभास हुआ है, तभी से उसके विषय में एक जिज्ञासा जाग चुकी है जो दिनों के बीतने के साथ साथ लगातार गहरी होती गई है, और जिसने उसके जीवन में एक प्रबल प्रेरिका शक्ति का काम किया है। गुरुकुल कांगडी की जिस कवितामय प्राकृतिक परिस्थिति में उसका बचपन बीता है, उसमें विचारों को जगाने और कल्पना को ऊंचा उडाने की एक अमोघशक्ति है। इसी भूमि ने उसे पहले पहल "मातृभूमि" का अभ्यास कराया, और इसी ने उसे उसके समझने में लगातार सहायता दी। पहाड जंगल, घाटी-मैदान, बागर खादर, नदी नहर द्वीप-अन्तरीप हिम और झुरू, रेगिस्तान और लू, थाना और छावनी, जंकशन और टर्मिनस, मण्डी और व्यापारपथ आदि जितने प्रकार की भौगोलिक वस्तुएँ भारतवर्ष में हैं, लगभग सब का नमूना यहां देखने को मिलता है। इसके शिवालक के वनों में मैदान और पहाड के सैकडों किस्म के पशु-पक्षी विचरते और वृक्ष-वनस्पति फलते फूलते हैं। एक के बाद दूसरी ऋतु इसमें नाटक के पट परिवर्त्तन के सौन्दर्य के साथ उतरती है। इसके पडौस के तीर्थों, छावनियों और मण्डियों में भारतवर्ष और तिब्बत के लगभग हरेक हिस्से के विविध भाषा भाषी और नाना वेष-भूषित यात्री भिन्न भिन्न ऋतुओं में दिखाई देते हैं। भारतवर्ष के बाह्य स्वरूप को देखना और समझना जितना इस भूमि में आसान है उतना और कहीं मुश्किल से होगा।

किन्तु किसी भी देश को क्या, शायद किसी भी वस्तु को, उसका पिछला चरित्र जाने बिना समझ लेना असम्भव है। विद्यमान भारतवर्ष को समझ लेने की इच्छा हमें उसके अतीत इतिहास की ओर खींच ले जाती है। जब से भारतवर्ष के विषय में इस लेखक की जिज्ञासा जगी है, भारतवर्ष का इतिहास उसके अध्ययन और मनन का मुख्य विषय बना हुआ है। भारतवर्ष की भौगोलिक रचना, उसकी भाषाओं, उसकी जनताओं उसकी संस्थाओं-प्रथाओं, उसके साहित्य, उसकी राज्यसंस्था, उसके धर्म और उसके दर्शन, सभी का समन्वय भारतवर्ष के इतिहास में आकर होता है। वही जिज्ञासा उसे भारतीय इतिहास के मूल उपादानों तक खींच ले गई और उसीने उसके लिए पुरातत्त्व और प्राचीन लिपियों जैसे रूखे विषयों को भी मनोरंजक बना दिया।

किन्तु बचपन में जो उद्देश धुंधले अपरिमित और विस्तीर्ण रूप में भासित होता है, अवस्था के परिपाक के साथ वही मानो जमकर ठोस परिमित और सुसीमित आकृति पकड़ लेता है। भारतीय इतिहास का अनुशीलन एक इतनी बड़ी वस्तु है कि उसके एक एक पहलू पर देश के सैकड़ों युवक अपना जीवन न्यौछावर कर सकते हैं। किसी एक व्यक्ति के लिए उस अनुशीलन के प्रत्येक पहलू के मूल उपादानों तक पहुंचना लगभग असम्भव है। प्रस्तुत लेखक के लिए भी भारतीय इतिहास के अनुशीलन में एक विशेष कार्यक्षेत्र आपसे आप धीरे धीरे निश्चित हो चुका है। विज्ञान की तरह इतिहास में भी एक वस्तु या घटना को अलग करके उसका विश्लेषण या विदर्शन करना सम्पूर्ण खोज का आधार होता है। किन्तु अनेक विश्लेषणों के परिणामों का समन्वय करना, उन विश्लेषणों के परिणामों में दीख

ने वाले परस्पर विरोध को सुलझाना, और यदि उनमें वास्तविक विरोध हो तो उसे पहचान कर उन्हें फिर से परखना, उन सबका सश्लेषण वा सन्दर्शन करना, उन्हें एक सूत्र में पिरोना और संगति में लाना, कम महत्त्व का काम नहीं है। वास्तविक इतिहास तो यही सन्दर्शन ही है। भारतीय इतिहास के भिन्न भिन्न छानबीन किये हुए अथवा न किये हुए पहलुओं को इसी समन्वय की दृष्टि से देखना, भारतीय इतिहास की गति में एक सतत विकास तन्तु को ढूंढ निकालना, या उस के सामान्य सिद्धान्तों को समझ लेना प्रस्तुत लेखक को अपनी ज्ञानपिपासा का विशेष निश्चित उद्देश दिखाई देता है।

पिछले पांच बरस उसे लगातार कालेज-कक्षा के विद्यार्थियों के लिए भारतीय इतिहास पर व्याख्यान देने पडे। सवत् १६७६ में ही उसने इन व्याख्यानों का एक मोटा ढांचा बना लिया था। अध्ययन और मनन से इस ढांचे का प्रत्येक अंग लगातार पुष्ट और परिपक्व होता रहा। अनेक बार जी करने परभी यह ढाचा अभी तक सक्षेप से भी लेखबद्ध नहीं किया जा सका। पहले पहल जब उसने व्याख्यानों की परम्परा आरम्भ की, उसे अनुभव हुआ कि भारतीय इतिहास के मुख्य विषय पर लाने से पहले विद्यार्थियों को कुछ आरम्भिक बातें समझाना आवश्यक होता है। यह आरम्भिक भूमिका भी हर बरस दोहराई जाती रही, कई बार तो इस पर सब से अधिक बल दिया गया। इस भूमिका में स्वभावत दो अंश होते थे। पहले अंश में यह समझाया जाता था कि हमारी इतिहास विषयक जिज्ञासा क्या है, इतिहास के अध्ययन का प्रयोजन क्या है, मानव इतिहास का क्या अर्थ है, उसका मोटा ढाचा कैसा है, उसकी सामान्य संगति किस

होगी। इस दशा में पाठक और पाठिकायें पुस्तक पढते समय यदि ऐटलस और नक्शों से सहायता लेते रहेंगे तो उन्हें समझने में कठिनता न होगी।

पुस्तक को बडी दौड धूप में छपाना पडा है, मैं उसके प्रूफ भी न देख पाऊंगा। इससे पहले मुझे अपनी एक पुस्तक छपानी पड़ी थी, और वह भी ऐसी ही दौड धूप में। प्रेस के प्रेतों ने उसकी ऐसी दशा करदी थी कि अपने मित्रों को वह पुस्तक दिखाते में लजाता हूं। मेरे लिखे से एक तिलभर भी इधर उधर छपजाय तो खीझ उठता हूं। पर इस बार मुझे अपने मित्र श्रीयुत श्रीकृष्णदत्त जी पालीवाल पर भरोसा है। छपाई की सब जिम्मेदारी उन्हीं की है। उन जैसे बेतकल्लुफ मित्र को धन्यवाद देते भी डर लगता है। अध्यापक रामरत्न जी और श्री शिवमूर्ति जी के प्रति कृतज्ञता पहले ही प्रकट कर चुका हूं।

फीरोजपुर, १० वैशाख १९८२।

जयचन्द्र विद्यालंकार

…काला है। यहां तक कि मराठी भाषा में भी, जिसमें हिन्दी …ाप' जैसा कोई सम्मानसूचक शब्द नहीं है, उन्हें महाराष्ट्र … पहाड़ों का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। अध्यापक महोदय …ह आसानी से भूल जाते हैं कि गुजरात और पंजाब की …स्यश्यामला भूमियों के निवासी भी "तमे" और "तुसीं" से …ड़ कर कोई अन्य सम्मानसूचक शब्द नहीं जानते।

इसी व्याख्याशैली को देखते हुए एक जर्मन विद्वान् ने …कल को उन्नीसवीं शताब्दी के सब से बड़े लालबुझक्कड़ (Magician) की पदवी दी है *। हमें इस लेख में इस …हत्वपूर्ण और मनोरञ्जक विषय के विवाद में पड़ने की …आवश्यकता नहीं है। इसे किसी और लेख के लिए रख कर …हां इतना कह देना पर्याप्त समझते हैं कि मानव इतिहास …क बड़ी पेचीदा वस्तु है, उसकी व्याख्या एक ही सामान्य …यम से नहीं हो सकती। बकल के सिद्धान्तों से आधुनिक …विज्ञान बहुत आगे बढ़ चुका है, उसके अनुसार परिस्थिति …मनुष्य के मार्ग को निश्चित अवश्य करती है, पर परिस्थिति …में केवल भौगोलिक परिस्थिति नहीं प्रत्युत उन सब प्राकृतिक …अवस्थाओं और मानव कृतियों का परिगणन करना चाहिए …जो मनुष्य के जीवन संग्राम पर प्रभाव डालती हैं। यहीं

---

* इस विषय का अधिकांश साहित्य फ्रांसीसी और …जर्मन में है। अंगरेजी में अध्यापक सैलिग्मैन की पुस्तक The Economic Interpretation of History बहुत अच्छी लिखी गई है।

इतिहास की आर्थिक व्याख्या है ❀। किंतु यह भी एक प्रकार का भौतिक भाग्यवाद (Material determinism) है। जीवन-संग्राम की अवस्थाएँ इसके अनुसार इतिहास एक मात्र प्रेरक शक्ति हैं। मनुष्य का मार्ग उनके द्वारा निर्दि है, मनुष्य उनके हाथ में खाली खिलौना है। पुराने के भाग्यवाद में भाग्य, किस्मत वा दैवी इच्छा ही मानव नाओं का एक मात्र निर्धारक मानी जाती थी, यह का भाग्यवाद है जिसमें रोटी की छीन झपट ही मनुष्य सारे चरित्र का—उसकी राजनीति, उसकी स
के धर्म, उसके विज्ञान उसके दर्शन और उसके सर्वस्व कारण मानी जाती है। मनुष्य की स्वतन्त्र विचारपूर्वक के लिए यह कोई स्थान नहीं छोड़ती। मानव इतिहास अनेक पहलुओं पर यह व्याख्या भी पूरी नहीं उतरती मनुष्य का स्वतन्त्र कर्तृत्व आज इस युग में ही विज्ञान के सहारे उसने प्रकृति को बहुत दूर तक अपने में कर लिया है, नहीं जगा, उस प्राचीन सरल पशुपालन ज़माने में जब आरम्भिक आर्य चरवाहे जंगल में फिरते चिन्ताकुल मनोवृत्ति से तारों को झांकने और गति का निरीक्षण करने लगते थे, या इस मनुष्य और संसा के उद्भव और अन्त के प्रश्नों का चिन्तन करने लगते थे

❀ चेम्बरलेन कृत उन्नीसवीं शताब्दी की आधार शिलाएँ मौलिक जर्मन पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद The foundatio of the Nineteenth century दो मोटी जिल्दों में हुआ है यूरोप के इतिहास के विद्यार्थियों को यह किता अवश्य पढ़ना चाहिए।

भी उनकी यह चिंता जीवन सग्राम की किसी प्रेरणा की
प्रत्युत मानव प्रतिभा के सहज उद्‌बोधन को सूचित करती
। मनुष्य की विचारपूर्वक कृति इतिहास के प्रवाह की एक
ल प्रवर्तक शक्ति है जो मानव इतिहास के धुंधले आरम्भ के
मय से काम कर रही है ॐ। प्राकृतिक परिस्थिति का
नुष्य पर बड़ा प्रभाव है, किन्तु मनुष्य अपने प्रयत्न से उस
रिस्थिति तक को बदल डाल सकता है। वह रेगिस्तान को
रों से सींच सकता, दलदलों का पानी सोखकर उन्हें हरा
रा मैदान बना सकता, हिमालय और हिन्दूकुश को मार्ग
के लिये बाधित कर सकता और पानामा की पहाड़ी
न में छेद कर अपने जहाजों के लिये रास्ता निकाल सकता
आकाशलोक के मेघ भी उसके प्रभाव से बाहर नहीं हैं।
तत्व की खोज ने सिद्ध किया है कि मध्य एशिया किसी
मय एक बड़ी जीती जागती सभ्यता का केन्द्र था। प्राकृतिक
वस्थाओं के बदलने से उसका सूखकर रेगिस्तान हो जाना
नुष्य की तुच्छता का एक दृष्टान्त है। किन्तु हो सकता है
इसी दृष्टान्त में इस हरे भरे देश को सुखाने में मनुष्य की
नी मूर्खता ही कारण हुई हो। अभी तक यह निश्चय नहीं
सका कि किन कारणों से इन्द्रदेव के मरुतों ने मध्य एशिया
मार्ग पर जाना छोड़ दिया, किन्तु जहां और और प्राकृतिक
रण सम्भावित हैं वहां मनुष्य के हाथों जंगलों का काटा
ना भी उसका एक कारण हो सकता है। यदि ऐसा हुआ हो

ॐ देखिये स्व० आल्फ्रेड रसेल वालेस कृत Social Env-
ironment and moral Progress

तो यह मनुष्य की प्रकृति को प्रभावित करने की समर्थता क
केवल एक दृष्टान्त होगा।

मनुष्य के इस सामर्थ्य को स्वीकार करते हुए भी हां इतिहास की आर्थिक व्याख्या को अधिकांश में सच मानन पड़ता है। मनुष्यजातियों की ऊंची आध्यात्मिक संस्कृति (Culture) का न सही उनकी भौतिक सभ्यता (Civilisatio के विकास का जीवन-संग्राम या रोटी की छीन झपट सब से बड़ा प्रवर्त्तक कारण है—यदि स्पष्ट कारण नहीं तो कम से कम मुख्यतम उत्तेजक तो अवश्य है। मनुष्य की अनेक संस्थायें जिन्हें हम सर्वथा धार्मिक और सामाजिक माने बैठे हैं—उदाहरण के लिए विवाह और परिवार की संस्थाएं—विशुद्ध आर्थिक शक्तियों की उपज हैं, और उन पर धार्मिक कलई पीछे से चढ़ी है। उच्च आध्यात्मिक संस्कृति की भी आर्थिक शक्तियां और अवस्थाएं चाहे उत्पादक कारण न हों, प्रतिबन्ध का भाव रूप से वे उसका कारण होती हैं, और प्रतिबन्धक रूप से उसकी उत्पत्ति को नियन्त्रित कर सकती हैं। और भौगोलिक परिस्थिति इन आर्थिक अवस्थाओं का एक बहुत बड़ा अंग और अंश है। यह परिस्थिति मानव इतिहास की एक मात्र प्रवर्त्तक शक्ति भले ही न हो, उसके विकास का मार्ग बाँधनेवाला एक बहुत बड़ा कारण अवश्य है। इस दशा में भारतीय ... का अध्ययन आरम्भ करने से पहले एक बार उसके ... आधार का पर्यालोचन आवश्यक प्रतीत होता है।



(२) भौमिक परिवर्तन।

ध्यान रहे कि हमें भारतवर्ष की भूमि-रचना को इस दृष्टि से देखना है कि उसने देश के इतिहास पर क्या प्रभाव डाला है, और देश के इतिहास में भी मुख्यत. साग्रामिक और राजनैतिक इतिहास को तरफ हमारा ध्यान रहेगा। भूमि की सतह की बनावट, पर्वतों और नदियों की स्थिति, समुद्रतट की आकृति, उपरली और निचली तहों की उपज, ये सब वस्तुएं इतिहास के प्रवाह पर प्रभाव करती हैं। प्राचीन काल से अब तक नदियों की स्थिति बहुत कुछ बदलती रही है। पर उसकी सामान्य दशा में (एक अपवाद* को छोड़कर) बहुत भेद नहीं हुआ। पर्वतों में से अरवली भारतवर्ष की सब से पुरानी रचना है। राजपूताना और उत्तर भारत के प्रागैतिहासिक समुद्र ने उसे काट काट कर मध्यभारत का पथार† बनाया है। विन्ध्याचल और दक्खिन के भिन्न भिन्न भागों की रचनायें भिन्न भिन्न काल की हैं और हिमालय का उठाव मध्यजीव या द्वितीय कल्प (Mesozoic or Secondary Age) के अन्तिम भाग खटिका युग [Cretaceous Period] में शुरू होकर नव्य

---

* यह अपवाद बीकानेर और पश्चिमी राजपूताना की बडी नदी हॉकडा का सूख जाना है। व्यास किसी काल में सतलुज में न मिलती थी यह बात सन्दिग्ध है। यही

† अंग्रेजी Plateau के लिए हमारे यहां प्राचीन शब्द राजपूताना और मालवा में प्रयुक्त होता है। आजकल के हिन्दी (अनुवादकों) को यह ख्याल नहीं आया कि हमारे देश में Plateau है तो उनका कुछ नाम भी रहा होगा या उस नाम

कलकलपूर्ण नगर हैं वहां अनेक नगरियों का स्थान घनों या जांगल मरुभूमि ने ले लिया है। कपिलवस्तु और कुसिनगर के प्राचीन स्थान आज हिमालय की उपत्य के घने वनों से ढके हुए हैं, और शिवपुर (शोरकोट) के चारों तरफ़ का बार का प्रदेश (शाहीवाल, मांटगमरी, झंग, लायलपुर के जिले) जिसमें बिखरे हुए स्तूपों और इमारतों के 'भिड" (खेड़े) किसी प्राचीन हरी भरी वस्ती को सूचित करते हैं, रावी और चिनाव की नई नहरें निकलने तक ऐसा जगल मरु [Steppe desert] था जिसमें अनेक स्थानों पर मृगमरीचिका के दृश्य देखे जा सकते थे।

भूमि की निचली तह में कोई विशेष प्राकृतिक परिवर्तन इतिहास की स्मृति में नहीं हुआ, पर मनुष्य के हाथों ने अनेक खानों को खोद खोद कर खाली कर डाला है। गोलकुंडा और पुन्नाड़ की खानें अब हीरे और वैडूर्य न ीं सूनीं, और बलोचिस्तान की आधी-खुदी गंधक की खानें हमारे पूर्वजों के परिश्रमी हाथों के स्मारक रूप से विद्यमान हैं।

इन परिवर्तनों पर ध्यान रखते हुए हम भारतीय भूमि के विद्यमान नक़्शे पर उन सब बातों का अध्ययन कर सकते हैं जो हमारे इतिहास के मार्ग को प्रभावित करती रही हैं और भविष्य में भी करेंगी। भारतवर्ष की सतह के किसी नक्शे को सामने रखकर आगे आने वाली को समझना बहुत सुगम होगा। इम्पीरियल गज़ेटि इंडिया ऐटलस के चौथे पांचवें चित्रों में क्रमश वनस्पति अङ्कित की गई है, सतह का आक्सफर्ड सर्वे आव दि

सामने भी मिलेगा। इन चित्रों में समुद्रतट से ६०० फुट तक की ऊचाई हरे या सफेद रंग से दिखाई है, फिर १०००, १५०० ३०००, ६०००, १२०००, १८०००, फुट की ऊचाइयां क्रमश और और रंगों से व्यक्त की हैं, और १८००० फुट से ऊंची बर्फानी चोटियों को भी पृथक रंग से सूचित किया है। सामान्य स्कूल ऐटलसों में भी यह चित्र मिल जाता है। जौघन की ऐतिहासिक ऐटलस के पहले चित्र में सतह के नक्शे के ऊपर वनस्पति का नक्शा छाप दिया गया है, जिससे जहाँ भूतल का ठीक रूप एक ही दृष्टि में आंखों को दिखाई दे जाता है वहां आरम्भिक विद्यार्थियों के लिए उस चित्र को समझना भी कठिन हो गया है।



[२] भारतवर्ष के भाग।

भूमितल के नक्शे [Orographical map] पर दृष्टिपात करते ही भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भाग स्पष्ट दीखने लगते हैं। उत्तर में एक बड़ा विस्तृत हरा मैदान दिखाई देता है, इनके ऊपर थोडी ही चौडाई में १५०० से २८००० फुट से ऊपर तक की ऊचाइयों की रेखाएं एक दूसरे के बाद क्रमश. खिंची हुई हैं जो हिमालय की रचना को सूचित करती हैं। हरे मैदान के दक्षिण में भी जमीन ऊपर उठने लगती है। पर पन्द्रह सौ और तीन हजार फुट तक अधिक नहीं। इस ऊचाई के दक्षिण में फिर ढलान शुरू होता है, और नर्मदा और ताप्ती, वर्धा और वेनगङ्गा, महानदी और ब्राह्मणी की धाराओं के साथ फिर हरिआवल दिखाई देती है। इसके

को ढकने वाली हिमालय और हिन्दूकुश की हिमाच्छन्न रेखा, तीसरे मध्य भारत जिसकी हमने नई परिभाषा की है, और चौथे दक्खिन।

(४) भारतीय मैदान

उत्तर भारतवर्ष एक खुला विस्तृत समथर मैदान है। यदि समुद्र की सतह से एक हजार फुट तक की ऊंचाई को एक ही हरे रंग से सूचित करें तो ब्रह्मपुत्र और सुरमा की घाटियों से लेकर गोमल और बोलनि दर्रों के ठीक दरवाजे तक एकसी हरी भूमि दिखाई देगी। इस डेढ हजार मील के विस्तार के एक छोर से दूसरे छोर तक आप ऐसे मार्ग से गुजर सकते हैं जिसमें आपकी दृष्टि लगातार लहलहाते खेतों की हरियाली में लहरें लेती जाय और एक छोटा सा कंकर भी कहीं आप के मार्ग को कण्टकित न करे।

इस विशाल मैदान को नदियों के दो जाल सींचते हैं, दोनों पानियों का उद्भव लगभग एक ही स्थान से होता है किन्तु जहाँ "पञ्चभुज सिन्धु नदी" का पानी उत्तरपूर्व से दक्षिण पश्चिम को बह जाता है वहाँ गंगा के प्रवाह का पानी उत्तर पश्चिम से दक्षिणपूर्व को झुक जाता है। इस से स्पष्ट है कि सतलुज और जमना के बीच का जल विभाजक प्रदेश इस मैदान का सब से ऊंचा भाग है जिसके दोनों तरफ हलका उतार है। सिन्धु नदी में पंजाब की नदियों के सिवाय स्वात, काबुल, कुर्रम और गोमल आदि की धारायें पश्चिम से अपना पानी ला मिलाती हैं, और उनके और आफ,

सीर और हलमद के बीच का जल विभाजक भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा को सूचित करता है। गंगा-जमुना के जलभण्डार में दक्षिण की तरफ से चम्बल, सोन और उनकी सहगामिनी धारायें अपना अपना हिस्सा डालती हैं, उनका पानी लूनी, मही, नर्मदा, गोदावरी और महानदी की दिशा इसलिए नहीं पकड़ता कि बीच में मध्य भारत का जल विभाजक विद्यमान है। नक्शे पर ये सब बातें बिलकुल साफ दिखाई देती हैं।

गंगा-जमुना और सिन्ध-सतलुज के गहरे हरे मैदानों से समुद्र के सिवाय और सब दिशाओं में धरती का धीमा धीमा क्रमिक उठाव है। इस उठाव के साथ साथ दोनों मैदानों के मध्य-भाग का उठाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। गंगा जमना का मैदान बंगाल के समुद्र तट से अदृश्य रूप से उठता हुआ रामपुर और देहली के नीचे छः सौ फुट की ऊंचाई को लांघ जाता है, और उधर सिन्ध की घाटी कराची से चल कर लाहौर के नीचे उस ऊँचाई को पार कर लेती है। बीच का भाग सारे उत्तर भारतीय मैदान में स्पष्टतः ऊंचा दिखाई देता है। कुरुक्षेत्र और पानीपत के प्रदेश की इस विशेष स्थिति का भारतवर्ष के इतिहास पर जो प्रभाव होता रहा उसे हम अभी देखेंगे।

उत्तर भारत के इस खुले मैदान में स्थल द्वारा यात्रा करने वाली सेनाओं या व्यापारियों के लिए नदियों के सिवाय और कोई प्राकृतिक रुकावट नहीं हैं, किन्तु इन नदियों के उमड़ते प्रवाह भी उपेक्षणीय वस्तु नहीं हैं। उत्तर पश्चिमी या पूर्व से यदि कोई आक्रमणकारी सेना इस मैदान में प्रवेश करेगी तो

जहाँ तक बनेगा हिमालय की छाया में चलती हुई उथले घाटों पर नदियों को पार करने का यत्न करेंगी। सिकन्दर ने पंजाब की नदियों को हिमालय के निकट निकट ही लाधा था। अकबर को अपने भाई के विरुद्ध ठीक बरसात की मोसम में काबुल पर चढ़ाई करनी पड़ी थी, इस लिए उसने अपनी फौज को आगरा से अम्बाला तक लेजाकर लगातार हिमालय के साथ साथ रक्खा था, यहा तक कि अमृतसर और लाहौर के मुख्य मार्ग को छोड़कर गुरदासपुर और स्यालकोट जिलों में से गुजरना उसे पसन्द था।

सिन्धु नदी डेराइस्माइलखा से पहले ही विशालरूप धारण करलेती है, यद्यपि महमूद को अपनी गजनी से पंजाब पहुंचने के लिए यही गोमल का रास्ता सीधा पड़ता था और प्राय भक्कर के सामने सिन्धु पार करना होता था, तो भी परे से आने वाले या भारतवर्ष से पश्चिम जानेवाले आक्रान्ताओं के लिए अधिक ऊपर ही सिन्धु को पारकर लेने में सुविधा होती है। प्राचीन आर्य्यकाल में सिन्धु नदी का मुख्य घाट अटक से भी ऊपर उदभाण्डपुर (आधुनिक ओहिन्द, उन्द या वहन्द) था, क्योंकि उन दिनों सिन्ध पर उत्तर पश्चिमी देशों को जाने वाला रास्ता काबुल नदी के दक्षिण दर्रा खैबर में होकर नहीं, प्रत्युत उत्तर को दर्रा मलाकन्द होकर (आधुनिक बाजौड़ प्रदेश में पुष्करावती* का चक्कर लगाकर पुरुषपुर

* पौराणिक इतिहास के अनुसार तक्षशिला और पुष्करावती (यूनानियों की प्यूकेलाओटिस) क्रमश भरत दाशरथि के दो पुत्रों तक्ष और पुष्कर की बसाई हुई हैं।

(पेशावर) पहुँच कर काबुल नदी के साथ साथ जाता था। सिकन्दर की सेना इसी रास्ते आई थी, और उदभाण्डपुर पर ही सिन्धु को लांघी थी। मध्यकाल से अटक सिन्धु का मुख्य घाट बन चुका है। मुसलमानी युग में लगातार इसी का केवल प्रयोग होता रहा है। रणजीतसिंह को सिकन्दर के समान केवल सिन्धु पार कर कहीं आगे धावा ही न करना था, प्रत्युत सिन्धु के सारे तट को काबू रखना था, सिन्ध प्रान्त पर भी उसकी आँख थी। इसी लिए उसने केवल पेशावर प्रदेश के लिए अटक के मार्ग को ही काबू नहीं किया, प्रत्युत डेराजात पर अधिकार रखने के लिए सिन्धु के सभी मार्गों पर कब्जा रक्खा। आजकल अंग्रेजों की रेलगाड़ी अटक पर सिन्धु को लांघकर पेशावर जाती है, और खुशालगढ़ के रास्ते कोहाट पहुँचाती है। और नीचे, सिन्धु के किनारे किनारे एक रेलवे लाइन है जिसमें गाडी सिन्धु कुन्दियाँ, दर्याखां और गाजीघाट पर मोटर लॉंच और जहाजों से नदी पार करने का प्रबन्ध है। सिन्धु और बिलोचिस्तान का प्रदेश क्योंकि पूरी तरह अंग्रेजों के आधीन है, इसलिए सक्खर और कोटरी पर सिन्धुनदी पर दो विशाल आश्चर्यकर पुल हैं जिन पर कराची और बिलोचिस्तान की सारी रेलवे पद्धति निर्भर है।

सिन्धु नदी के सब से सुगम उपरले घाट से जेहलम तक सीधे रास्ते से उतना ही अन्तर है जितना फिलौर से जगाधरी तक सतलुज और जमना में। हिमालय की शृङ्खला ने यहां मैदान के बीच में नमक की पहाड़ियों के रूप में अपनी एक भुजा आगे बढा दी है, और बेचारी वितस्ता (जेहलम) काश्मीर की घाटी के तंग हुए मार्ग से खुले मैदान में आकर अभी स्वच्छन्द चाल चलना चाहती ही है कि यह पहाड़ी भुजा फिर उसका

मार्ग नियंत्रित कर देती है। नमक की पहाड़ियों की यह लि सांग्रामिक दृष्टि से बड़े महत्व की है। आर्य-काल में पु और पुरुषपुर (पेशावर) के मार्ग को यहीं पर तक्षशिला करती थी, और सिकन्दर और "पोरस" का अमर संग्राम इसी नाके पर—जेहलम पर—हुआ था। काश्मीर दार्वाभिसार ('आधुनिक राजौरी तथा भिम्बर रियासतें) तथा उरशा (आधुनिक हज़ारा जिला) के मार्ग को भी यही नाका काबू करता है। सिकन्दर को अभिसार देश की चिन्ता यहीं करनी पड़ी थी, और शेरशाह ने घीर गक्खड़ों के इसी देश में एक तरफ़ काबुल से हुमायू के और दूसरी तरफ़ काश्मीर से मिर्जा हैदर के आगमन पर दृष्टि रखने के लिए रोहतासगढ़ की रचना की थी। आज भी भारतवर्ष की सब से बड़ी फ़ौजी छावनी (रावलपिंडी) किसी सम्भावित सिकन्दर के पैरों की आहट को इसी ऐतिहासिक स्थान में उन्निद्रभाव से सुना करती है।

पंजाब और गंगा-जमना-प्रदेश की सब नदियों के विषय में इसी प्रकार समझा जा सकता है। शेरशाह ने दक्षिण पश्चिम पंजाब में कई थानों और किलों की रचना की थी, यदि मुलतान के नीचे चनाब के ठीक पूर्वीतट पर उसके नाम का जो नगर है वह उसी का किला रहा हो तो उस की पैनी आँख द्वारा इस स्थान के सांग्रामिक महत्व की पहचान भी उतनी ही प्रशंसनीय है जितनी नमक की पहाड़ियों में रोहतास के। भारतवर्ष का इतिहास इन नदियों के गौरव के सैकड़ों और ऐसे दृष्टान्त उपस्थित कर सकता है। वैदिक काल में उत्तर पञ्चाल (क़रीब क़रीब रोहेलखण्ड का प्रदेश, बरेली जिले में अहिच्छत्रा उसकी राजधानी थी) के राजा

सुदास की पश्चिम की तरफ बढ़ती सेना को सतलुज और व्यास के प्रवाह से पार उतारने के लिए प्राचीन अनुश्रुति (Tradition)* के अनुसार विश्वामित्र ऋषि को इन दोनों नदियों की जो स्तुति करनी पड़ी थी उस की मनोहारिणी कविता अब भी ऋग्वेद में विद्यमान है†। भारतीय इतिहास का सब से पहला पर्दा जब हमारे आगे खुलता है तब भी हम पुरुरवस् ऐल की राजधानी गंगा-यमुना के ठीक संगम पर प्रतिष्ठान (प्रयाग) के नाके में पाते हैं। प्राचीन आर्यों के संगम-स्थान को पवित्र मानने की जड़ में यही भौतिक उपयोगिता का विचार दिखाई देता है। शैशुनाग वंश के जिस साम्राज्यकामी राजा ने विदेह, वैशाली और चम्पा (अङ्गदेश = भागलपुर) पर आंख रखने के लिए पाटलीग्राम की किलाबन्दी की थी उसे सामरिक उपयोगिता की खूब पहचान थी। पाटलीपुत्र (पटना) की स्थिति उस समय गंगा और सोन के संगम के ठीक बीच में थी, आजकल सोन के अपनी धारा को दस मील नीचे ले जाने के कारण उसकी स्थिति का वैसा गौरव नहीं रहा।

दिल्ली, आगरा, कालपी, चुनार इत्यादि की स्थिति नदियों के किनारे पर रहने के कारण विशेष सामरिक महत्त्व की रही है। राजपूताना और अवध के बीच आगरा जमना के ओर फर्रुखाबाद या कानपुर गंगा के घाट को काबू करता है।

---

* इस अर्थ में संस्कृत में पहले श्रुति शब्द अधिक प्रयुक्त होता था, पर वह अब दूसरे अर्थों में आगया है। अनुश्रुति शब्द भी प्राचीन है। देखिये, पार्जीटर कृत Ancient Indian Historical Tradition पृ० १८

† मंडल ३, सूक्त ३३।

यहाँ फर्रुखाबाद के पास फतहगढ़ के किले में सन् १७५१ में मराठों से दबाया जाने पर अहमदखा (फर्रुखाबाद के ने शरण ली थी और १८०४ में लार्ड लेक ने होल्कर का ... किया था। अवध और बुन्देलखण्ड मालवा के ... घाट को कालपी काबू करती हैं, और इसीलिए इतिहास में उसका बड़ा महत्व रहा है। चुनार इसी प्रकार पूरब और बघेलखण्ड के बीच के मार्ग का नाका है।

विद्रोही औरंगजेब जसवन्तसिंह को हराकर जब ग्वालियर तक आ पहुंचा था, दारा की फौज ने उसके सामने चम्बल के सब घाट रोके हुए थे। एक स्थानीय जमींदार से पता पाकर धौलपुर से चालीस मील नीचे एक तुच्छ से घाट पर जहां दारा की फौजें न थीं औरंगजेब ने नदी को पार किया। इस बीहड़ जल-हीन मार्ग से अपनी फौज को ले जाने में औरंगज़ेब ने अपने ५००० सैनिकों का नुकसान कर लिया, किन्तु इतने सैनिकों की मृत्यु उस फल की दृष्टि से महगी न था जो एक बन्दूक चलाये बिना ही उसे प्राप्त हो गया—इसी एक चाल

---

* यों तो पूर्व अपेक्षा का शब्द है, पंजाब के लिए देहली पूर्व है। और अवध के लिए बंगाल। लेकिन हमने पूरब शब्द का प्रयोग उस विशेष प्रदेश के लिए किया है जिसके निवासियों को पंजाबी लोग पुरबिया कहते हैं। रुहेलखण्ड के पूर्व की तरफ बंगाल के पश्चिम का इलाका ही पंजाबियों के लिए "पूरब" है। शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती हमारे इस प्रयोग को शायद पंजाबी पन कहें। किन्तु उन्हें विदित होना चाहिए कि संस्कृत-लेखकों का प्राच्य देश भी यही है और यूनानियों का Pr... भी यही।

से वह दारा के पीछे आगरा की तरफ जा पहुँचा, और दारा को बिना लड़े पीछे भागना पड़ा।

बंगाल और उत्तरीय गंगा जमना प्रदेश की शक्तियां जब एक साथ एक दूसरे पर लपकती हैं बक्सर की भूमि स्वभावतः उनकी रणस्थली बनती है। हुमायूं और शेरखां की टक्कर यहीं हुई थी, और क्लाइव की सेना ने बादशाही फौजों को यहीं नीचा दिखाया था। हुमायूं और शेरखां की लड़ाइयों की योजना तो नदियों की स्थिति पर ध्यान रक्खे बिना समझ में ही नहीं आ सकती। दक्षिण बिहार के छोटे छोटे पहाड़ों की शृंखला गंगा के नीचे नीचे बंगाल के किनारे तक इस प्रकार फैली हुई है कि उसके और गंगा के बीचोंबीच चुनार से सीकरी गली तक का मार्ग बिहार बंगाल के बीच स्वभावसिद्ध सांग्रामिक राजपथ बन गया है। मुंगेर जिले में खड़गपुर की पहाड़ियाँ गंगा से सिर्फ ६ मील दक्षिण को हैं, ६० मील पूर्व को तेलियागढ़ी पर उनका अन्तर केवल ढ़ाई मील का रह जाता है। यदि आमने सामने से दो सेनायें इस मार्ग का प्रयोग कर रहीं हों तो कोई भी पहाड़ों का चक्कर लगाये बिना या गंगा पार किये बिना दूसरी के पीछे अचानक नहीं पहुँच सकती। खड़गपुर-पहाड़ियों के पास सूरजगढ़ पर शेरखां ने थोड़े से सवारों से बंगाल के शाह की बड़ी फौज को रोका और हराया था, और उसी स्थान पर उसके वंशज अदालीसूर ने अपना राजमुकुट खोया था।

हुमायू के साथ लड़ाई होने पर शेरखां इन पहाड़ों का चक्कर लगा कर नीचे झाड़खंड के रास्ते गौड़ से रोहतासगढ़ आ निकला था; शुजा का पीछा करते समय मीरजुमला ने

भी इसी प्रकार मुंगेर (प्राचीन मुद्गगिरि) के क़िले से के लिए खड़गपुर पहाड़ियों का चक्कर लगाया था।

बंगाल की नदियाँ चौमासे में अत्यन्त भयानक रूप कर लेती हैं। पूर्वी बंगाल और आसाम तो उस समय उथला समुद्र सा होता है जिसमें गांव और झोंपड़े दिखाई देते हैं और प्रत्येक किसान के लिए नाव उतनी ही आवश्यक होती है जितना हल। बख़्तियार ख़िलजी ने उतावलेपन में जब भूटान पर चढ़ाई कर दी थी, उसे शिक्षा देने में भूटानियों ने बरसाती नदियों का अच्छा उपयोग किया था। उसका वृत्तान्त तो आज ठीक ठीक नहीं मिलता, पर औरंगज़ेबी फ़ौजों की आसाम की चढ़ाई की कहानी अभी पूरी पूरी मौजूद है। इसे पढ़नेसे इन नदियों की शक्ति समझ में आती है। ब्रह्मपुत्र की विपुलधारा तिब्बत के पहाड़ों की दराड़ में से जहाँ भारतवर्ष के मैदान में उतरती ही है वहीं से नाग, खसिया और गारो पहाड़ियाँ उसे लगातार पश्चिम को खदेड़ती आती हैं। सदिया से धुबड़ी तक ४०० मील के इस पश्चिमी प्रवाह में ये पहाड़ियाँ ब्रह्मपुत्र का उसी प्रकार साथ पकड़े हुए हैं, जिस प्रकार चुनार से भागलपुर तक बिहार की पहाड़ियाँ गंगा का। उसके बाद दोनों

हिमालय से सकोश, मनास, बड़ नदी और भराली को गरायें आकर ब्रह्मपुत्र मे मिलती हैं, दक्षिण मे गारो खसिया और नाग पहाड़ियों से ऐसी ही अनेक धारायें आती हैं। बरसात मे ये सब उग्ररूप धारण कर दोनों स्थलमार्गों को रोक देती हैं, और ब्रह्मपुत्र के जलमार्ग पर जिस सेना का अधिकार न हो उसके लिए मरने के सिवाय कोई चारा नहीं छोड़तीं। मीरजुमला की फौजें जो दिहिंग नदी के किनारे गढ़गाव तक पहुच चुकी थी, चौमासा आने पर पानी में इस प्रकार घिर गई थीं कि उनका प्रत्येक थाना खुले समुद्र में उठा हुआ द्वीप सा दिखाई देता था, चारों तरफ के खेत झीलें मालूम होते थे, थानों का पारस्परिक सम्बन्ध बिलकुल टूट गया था और कभी कभी तो तम्बुओं में घुटनों तक पानी आजाता था जिसमें सैनिकों और घोड़ों को खड़े बितानी होती थी। इस दुर्दशा से उनको यदि कोई बचा सका तो वह इब्नहुसैन की जलसेना थी।

उत्तर भारतवर्ष के मार्गों की पद्धति इस मैदान की भौगोलिक रचना पर निर्भर है, और उस रचना में नदियों की स्थिति एक बड़ा आवश्यक अंश है। यही कारण है जिससे प्राचीन काल से आज तक इस मैदान में जो बड़े बड़े राजपथ बनते आये हैं, उनकी दिशा सदा एकसी रही है। यह एक स्थिर कारण का स्थिर परिणाम है, एक आकस्मिक वस्तु नहीं। कौटिल्य का उनका वर्गीकरण करना, इसी लिए सर्वथा सगत है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में और उससे पहले हम तक्षशिला से ताम्रलिप्त (आधुनिक तामलुक, उस समय बगाल के मुख्य बन्दरगाह) तक जिस मार्ग का

पता पाते हैं, शेरशाह और अकबर की सड़के-आज़म का अनुसरण करती थी।

हमने कहा था कि उत्तर भारत का मुख्य रास्ता हिमालय की छाया में चलना पसन्द करता है, पर इस चौडे मैदान में केवल एक रास्ता नहीं है। पेशावर से सहारनपुर तक और वहां से लखनऊ तक सीधी रेलवे लाइन गई है जो उत्तरी मार्ग को सूचित करती है और जिसके बड़े अंश में हिमालय की बाह्य शृंखला की पहाडियां दृष्टिगोचर होती हैं। इस मार्ग की रेखा वज़ीराबाद से दक्षिण को झुकती है केवल पंजाब की राजधानी को छूने के लिए, और जालन्धर तक फिर अपनी दिशा ठीक कर लेती है। इस मार्ग के बराबर एक दक्षिणी मार्ग है जो लाहौर से फ़ीरोजपुर, भटिंडा होकर देहली पहुचता है, वहां जमना पार कर दोआब में प्रवेश करता और गंगा के नीचे नीचे प्रयाग पहुचता है, जहा फिर जमना पार कर गंगा के नीचे नीचे हो लेता है। दक्षिणी और उत्तरी मार्ग को परस्पर मिलाने वाली अनेक लाइनें हैं, किन्तु लखनऊ से आगे फ़ैज़ाबाद को परताबगढ के रास्ते जो लाइन प्रयाग से मिलाती है, अथवा जौनपुर के रास्ते बनारस से, वही अन्तिम हैं। बनारस पर गंगा पार कर हम मुगलसराय में दक्षिणी रास्ते को पकड लेते हैं॥। दोनों मार्गों के बीच में रहने से बनारस एक बडा महत्वपूर्ण नाका है। उससे नीचे रेलवे लाइन कहीं गंगा को पार नहीं करती, स्टीमरों द्वारा गंगा के ऊपर नीचे का यातायात (*Traffic*) परस्पर मिलता है। ...रस के पूर्व में गंगा के ऊपर ऊपर जो ... स्थानिक महत्वका है, प्रधान मार्गों से उसका ...न्ध नहीं रहता। उक्त दो प्रधान मार्गों-

मुख्य डाक प्रतिदिन ढोई जाती तथा छावनियों को परम्परा में परस्पर सम्बन्ध रक्खा जाता है। मुगलसराय के बाद गंगा के नीचे के मैदान में ही इस राजपथ का फिर दो मुख्य शाखायें हो जाती हैं, एक कलकत्ता पहुँचती है पटना भागलपुर होकर, और दूसरी गया के रास्ते पहाड़ों से होकर। शेरशाह ने राजमहल के पहाड़ों के बीच का यही रास्ता पकड़ कर हुमायूँ को चकित किया था।

कलकत्ता पेशावर के प्रधान मार्गों से जिस प्रकार उत्तर पूर्वी बिहार और आसाम एक तरफ रह जाते हैं उसी प्रकार सिन्ध भी। आसाम के मार्गों का उल्लेख हो चुका है, आधुनिक युग में रेलवे लाइन खसिया पहाड़ियों के बीच में से भी गुजरने लगी हैं। सिन्ध की मार्गपद्धति बड़ी सरल है। कराची और हैदराबाद से लोधराँ और खानेवाल होकर अनेक रेलवे-रेखायें सिन्ध को पंजाब के उत्तरी मार्ग से, तथा समासट्टा से सतलुज के नीचे भटिण्डा पहुँचने वाली लाइन दक्षिणी मार्ग से सम्बन्ध जोड़ती हैं। देहली, पंजाब और सिन्ध के रास्तों को काबू करने के कारण भटिण्डा की स्थिति बहुत महत्त्व पूर्ण है, ब्रिटिश भारत का सबसे बड़ा शस्त्रागार इससे कुछ ही ऊपर सतलुज के किनारे फीरोजपुर में है। सिक्ख राज्यकाल तक यह महत्त्व पूर्ण नाका जंगलों से ढका हुआ था। बादशाही शक्ति के साथ गोरिल्ला-युद्ध करते समय सिक्ख लोग प्रायः इसी जंगल को अपना आधार और शरण बनाते थे, यहां से निकल कर मुख्य रास्तों पर झपटना खूब अच्छी तरह हो सकता था।

आधुनिक विज्ञान से उत्पादित अवस्थाओं ने भौतिक स्थिति के प्रभाव में बहुत कुछ रद्दोबदल कर दिया है। सहस्रों

की सख्या में जिन ऐतिहासिक ऐटलस का हमारे विद्यार्थी हर साल प्रयोग करते हैं, उसके पहले वाक्य में ही जीवन साहस पारजाते हैं—The physical features of a land are responsible for much in the making of its earlier history किसी देश के भौतिक लक्षण उसके आरभिक इतिहास की गति पर बहुत प्रभाव डालते हैं। आरम्भिक शब्द पर ध्यान दीजिए, मानो आधुनिक इतिहास-पलाशी युद्ध के बाद वास्तव भौतिक बन्धनों से मुक्त है। यह तो एक तुच्छ सग्रहकर्ता का कथन है, विन्सेन्ट स्मिथ अपनी आक्सफोर्ड हिस्टरी आफ इण्डिया में लिखते हैं—

The progress of modern science has not only destroyed the political and strategical value of the natural barriers offered by mountains, rivers and forests It has also rendered useless the ancient fortresses, which used to be considered impregnable, and were more often won by bribery than by assault

Asirgriah in Khandesh which in the sixteenth and seventeenth centuries was reckoned to be one of the wonders of the world, so that it was 'impossible to conceive a stronger fortress' defied the arioms of Akbar, yielding only to his gold. Now it stands desolate without a single soldier to guard it When Lord Dufferin decided to pay Sindia the compliment of restoring Gwalior fort to his keeping, the transfer could be effected without the slightest danger to the safety of the Empire The numberless strongholds on the tops of the hills of the Deccan before which Aurangzeb

wasted so many years are now open to any sightors; The sieges of fortresses which occupy so large a space in the earlier history will never occur again.

आधुनिक विज्ञान की उन्नति ने केवल पर्वतों, नदियों और जंगलों की प्राकृतिक बाधाओं का ही राजनैतिक और सामाजिक मूल्य नष्ट नहीं कर दिया। उसने उन प्राचीन किलों को भी निरर्थक कर दिया है जो अभेद्य समझे जाया करते थे और प्रायः आक्रमण से नहीं रिश्वत से जीते जाते थे। खानदेश में असीरगढ़ ने, जो सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों में संसार का एक आश्चर्य समझा जाता था, यहां तक कि उससे "ज्यादा मजबूत किले की कल्पना करना असम्भव" था, अकबर की शस्त्रशक्ति का पराभव किया था, और केवल रुपये से ही काबू आया था। आज वह ऊजड़ पड़ा है, एक भी सैनिक उसकी रक्षा नहीं करता। लार्ड डफरिन ने जब ग्वालियर का किला लौटा दे कर शिन्धे को सम्मानित करने का निश्चय किया था, साम्राज्य की रक्षा को इस दान से जरा भी खतरा न था। दक्खिन की पहाड़ी चोटियों पर के असंख्य गढ़ जिनके सामने औरंगजेब ने इतने बरस गँवाये थे, अब किसी भी दर्शक के देखने के लिए खुले हैं प्राचीन इतिहास में किलों के घेरे इतना स्थान लेते हैं, पर आगे वे कभी न होंगे।

निःसन्देह ये सब बातें ठीक हैं, किन्तु 'आधुनिक विज्ञान युग में भौतिक अवस्थायें और प्रकार से अपना प्रभाव करती हैं। स्मिथ-साहेब खुद ही कहते हैं— modern generals think much more of a railway-junction than of the most inaccessible castle आधुनिक सेनापति एक अत्यन्त दुगम गढ़ की अपेक्षा एक रेलवे-संगम (जंक्शन) को बहुत अधिक

चिन्ता करते हैं। पर रेलवे सगमों की स्थिति भौतिक अवस्थाओं पर निर्भर नहीं होती, यह कहने का कोई साहस नहीं कर सकता। आजकल की रेलवे-लाइनों की बनावट में भौतिक अवस्थाओं का जो प्रभाव होता है, उसका हम ऊपर स्थान स्थान पर निर्देश करते आये हैं। सवत् १९७७ के शुरू में पजाब की रेलवे हडताल के समय लाहौर में हडतालियों को पूरी सफलता हुई, पर उसका विशेष फल न हुआ था। कराची से आने वाली डाक उस समय रायविंड से कसूर हो कर अमृतसर के रास्ते कलकत्ता जा सकती थी, और खानेवाल शेरकोट के रास्ते अमृतसर का वजीराबाद और पेशावर से सम्बन्ध हो सकता था। किन्तु उस समय यदि लाहौर के साथ साथ समासट्टा, लोधरां, खानेवाल और लालामूसा एक तरफ, और भटिंडा, फीरोजपुर और लुधियाना दूसरी तरफ हडतालियों के काबू में होते तो पजाब की रेलों का शिकञ्जा उनके हाथ में था। रायविंड कसूर और शेरकोट रोकर मध्य पंजाब के अन्दरूनी यातायात को भी बन्द किया जा सकता था, और मुजफ्फरवाल, गोलरा, कुन्दिया और शेरशाह ले लेने से सिन्ध सागर की रेलवे पद्धति भी किसी काम की न रह जाती।

स्मिथ महाशय भारतीय विद्यार्थियों पर आधुनिक शासकों की शक्ति का दबदबा जमाने के लिए गम्भीर सरलता में भारतवर्ष की नदियों का उपहास करगये हैं— The mighty Indus and Ganges are now spanned by railway bridges as securely as a petty water course is crossed by a six foot cu o सिन्ध और गंगा के महान्-प्रवाह आज रेलवे पुलों से ऐसे सुरक्षित रूप से बाँधे जाते हैं जैसे एक तुच्छ नाली एक दो गज़ी डाट से।

ठीक है, जहाँ सारे पंजाब का पानी लिए हुए सिन्धु के वर्षा-क्षुब्ध विशाल जलराशि का सक्खर के स्तम्भशून्य * सेतु से उपहास किया जा सकता है, और प्रतिदिन दसों डाक माल और मुसाफिर-गाड़ियाँ गड़गड़ाती हुई उस पर से गुजर सकती हैं, वहाँ इन नदियों की तुच्छता पर इस प्रकार चुटकियाँ लेना सर्वथा सगत अभिमान है। पर याद रहे कि जहाँ एक शक्ति सक्खर के विशाल समुद्रपर पुल बाँध सकती है, वहां दूसरी शक्ति उस पुल को उड़ाकर रोड़ी और रुक स्टेशनों के बीच का नाजुक डोर को निरर्थक बना सकती है, और इस के साथ यदि हैदराबाद-कोटरी के टुकड़े को भी हथिया ले तो सारे सिन्धु के रेलवे-जाल को बेपेंदे का लोटा बना सकती है। इतनी बात हो जाय तो यहीं बस न होगी। बिलोचों के फिरके यह खबर पाते ही कि कराची और लाहौर की फौजें अब रेलगाड़ी में दौड़ती हमारे देश में नहीं आ सकतीं सिबी और स्पेजुन्द की पटरियों के पेंच खोल दें और अंग्रेज ड्राइवरों का नुस्खों से डोक फारिस के किनारे दुज़्दाप तक हफ्ते में दो चक्कर लगाना भी मुश्किल हो जाय, तो कुछ आश्चर्य नहीं। बिलोचिस्तान और सीमा प्रान्त की बहुसंख्यक सरकारी सेनायें पीछे से कुमुक बन्द होने पर भी एक दम हार न जायेंगी, पर कुछ समय के लिए उन्हें अपनी नानी जरूर याद आ जायगी। सिन्ध की इस शक्ति का यदि पंजाब और मारवाड़ में कोई

---

* सक्खर का पुल वस्तुतः आधुनिक विज्ञान की शक्ति का एक दृष्टान्त है। रुड़की एंजीनीयरिंग कालेज में उसका नमूना देखा जा सकता है।

शक्ति सहयोग करने वाली हो और समासट्टा और लूनी को हथिया कर उन दोनों दिशाओं से सेनाओं का आगमन रोक सके तो ब्रिटिश साम्राज्य की विशाल सामुद्रिक शक्ति को कराची के तट पर ला टकराने के सिवाय कोई चारा न होगा। सामुद्रिक शक्ति क्या कुछ कर सकती है, सो हमें आगे देखना है।

ये बातें सुदूर कल्पना की मालूम होती हैं। वस्तुतः आधुनिक विज्ञान का जमाना शुरू हुए अभी इतने दिन नहीं बीते जिनमें भारतवर्ष में अनेक ऐतिहासिक परिवर्तन हो सकते, इसीलिए हम अपने कथन की पुष्टि में अतीत इतिहास के दृष्टान्त न ला सकने पर विवश हैं। किन्तु इतिहास की घटना प्रसू चर्चा ब्रिटिश "शान्ति व्यवस्था और सुशासन" के इन थोड़े दिनों में भी ऐसी वन्ध्य नहीं होगई जो स्मिथ महाशय के उक्त कथन की परख के लिए एक भी दृष्टान्त उपस्थित न कर सके।

संवत् १९७२ में बंगाल के विप्लववादियों ने बंगाल की चौमासे में उमडी नदियों का कुछ वैसा ही उपयोग करने का यत्न किया था* जैसा पौने चारसौ साल पहले शेरशाह ने किया था। एक अच्छी संख्या में जर्मन

* हमारे कानूनपेशा राजनैतिक नेताओं के मत में इस सन्दर्भ के शुरू में "रोलट रिपोर्ट के अनुसार" लिखना चाहिए, क्योंकि ये बातें किसी कचहरी में साबित न होने के कारण प्रामाणिक नहीं हैं। पर वास्तविक इतिहास का विद्यार्थी कानून के कटघरों को ऐसा गौरव नहीं दे सकता। यदि, उसकी दृष्टि उनके वितण्डावाद में ही उलझ जाती है तो उसमें ऐतिहासिक बुद्धि नहीं है-ऐतिहासिक घटनायें ऐसे हुआ करती हैं यह वह नहीं

अस्त्र-शस्त्रों का अमेरिका से चालान होचुका था, वे (जावा में) बटेविया तक पहुंच भी गये थे। जर्मन रुपया कलकत्ते के क्रान्तिकारियों को ब्रिटिश सरकार की डाक और तार द्वारा मिल रहा था। उन लोगों का यह विचार था कि बंगाल की थोड़ी बहुत फौज को वे सीधा कर लेंगे बशर्ते कि बाहर से सेना का आना कुछ समय के लिए रोका जासके। उत्तर भारतीय मैदान से बंगाल में ईस्ट-इंडिया-रेलवे का राजपथ प्रवेश करता है। दक्षिण से मद्रास-मेल बालासोर (उड़ीसा) के रास्ते आती है, और बंगाल नागपुर-रेलवे उसी तंग मैदान की रेखा से चोरी चोरी बंगाल के खुले मैदान में प्रवेश करती है जिसे हमने उत्तर और दक्षिण की विभाजक रेखा कहा था। यदि इन तीन रेल-रास्तों के पुल उड़ा दिये जाते तो बंगाल के विप्लववादी एकबार तो अपने देश को हथिया लेते, उनका अगली कशमकश में सफल वा विफल होना इस बात पर निर्भर होता कि एक बरसात के बीतते बीतते वे कितनी तैयारी कर सकते। यही यतीन्द्र मुकुर्जी के उपजाऊ मस्तिष्क की योजना थी, और वह और उसके अनुयायी खाली कल्पनाकर के बैठ रहने वाले न थे। स्वयं यतीन अपनी मंडली के साथ बालासोर में मद्रास रेलवे को ठीक करने गया था, भोलानाथ चटर्जी को चक्रधरपुर भेजा गया था। बंगाल नागपुर रेलवे का

समझता। स्वयं विप्लववादियों के नेता हमारे राजनैतिक नेताओं की इस संशयात्मक वृत्ति से इतना ऊब गये हैं कि वे इसे कायरता और कल्पना-वन्ध्यात्व का सूचक समझते हैं।

‡श्री० शची द्रनाथ सान्याल कृत 'बन्दी जीवन' प्रथम भाग, हिंदी अनुवाद पृ० ७ देखिये।

प्रबन्ध करने के लिए, तथा सतीश चक्रवर्ती के जिम्मे ईस्ट इंडियन रेलवे का अन्तय का पुल था। अगली कार्यक्रम के लिये बंगाल के विप्लववादियों की जत्था बन्दी हो चुकी थी, और पूर्वी बंगाल तथा कलकत्ता के इन्तजाम के लिए भिन्न भिन्न टुकड़ियां मुकर्रर हो चुकी थीं। जर्मन जहाज मेवरिक को सुन्दरवन में उतारने के लिए एक जत्था भेजा गया था जिसने नाव आदि का सब प्रबन्ध कर लिया था। इस तथा अन्य जहाजों में शस्त्रास्त्र और रुपये के सिवाय दो जर्मन अफसर भी विद्रोही सेना को सैनिक शिक्षा देने के उद्देश से आरहे थे। एक बार विद्रोह का खड़ा हो जाने पर पूर्व बंगाल में खुल्लमखुल्ला स्वेच्छासेवक-सेना भर्ती की जाती जिसे ये अफसर शिक्षा देते।

इतिहास की धारा जब इस घटना का प्रसव करने को ठीक तैयार थी तभी उसके भ्रूण की हत्या हो गई*। यदि यह प्रसव हो जाता तो स्मिथ महाशय के उक्त कथन का पूरा परीक्षा हो जाती। अब भी प्रश्न केवल इतना है कि आधुनिक विज्ञान के युग में इन रेलवे पुलों को उड़ाने के लिए कितने गोला बारूद की अपेक्षा है, और यदि चौमासे के मौसम में ये एक बार उड़जाँय तो फिर उन्हें बनाने में कितना समय लगेगा। इन प्रश्नों के उत्तर से अनभिज्ञ होने के कारण हम इस विवाद का अन्तिम निर्णय या नहीं कर सकते। क्या कोई जानकार सज्जन इस विषय पर प्रकाश डालेंगे?

यह ठीक है कि एक बार ऐसे पुलों के उड़ा दिये जाने पर भी आधुनिक विज्ञान की शक्ति अपनी मोटर-लांचों और स्टीमरों का प्रयोग कर सकती है। किन्तु यहां भी यह प्रश्न है कि इनके

* रौलट रिपोर्ट, अध्याय सातवां।

द्वारा आधुनिक युद्धों की बोझल सामग्री कहां तक ढोई जा सकती है। इस प्रश्न का उत्तर रणकलावेत्ता चाहे कुछ ही दें, यह बात निश्चित है कि जनता का हर घर और हर बाट साम्राज्य के विरुद्ध उठ खड़ा हो तो इन साधनों की धूप पर उसकी शक्ति नहीं खड़ी की जा सकती। विज्ञान ने प्राकृतिक रुकावटों का गौरव कम कर दिया है, पर नष्ट नहीं किया। भारतीय साम्राज्य के शासक आज केवल विज्ञान के बल पर भारत पर शासन नहीं कर रहे, भारतीय जनता का दब्बू, कायर, सन्तोषी, सुशील और पालतू स्वभाव उनका बड़ाभारी सहायक है। विज्ञान की शक्ति की ठीक ठीक जांच हम तब कर सकते यदि अंग्रेजों की तरह हिन्दुस्तानी भी दृढ़ और वीर जाति होते, और दोनों तरफ से बराबर मुकाबला होते हुए केवल वैज्ञानिक शक्ति का भेद होता। फलतः हम भारतीय नदियों का उपहास करने में स्मिथ महाशय का अनुसरण करने को तैयार नहीं हैं।

उत्तर भारत की भौगोलिक रचना की सब से अधिक महत्त्वपूर्ण बात का उल्लेख अभी बाकी है। कुरुक्षेत्र के जल विभाजक के विषय में हम ऊपर कह आये हैं। हमने देखा था कि गंगा-यमुना और सिन्धु-सतलुज के प्रवाह को एक दूसरे से अलग करने वाला यही जलविभाजक है। दोनों प्रवाहों से सिंचे प्रदेशों में नदियों का सामरिक गौरव कितना है, इस विषय पर भी हम विचार कर चुके हैं। इस बीच के जलशून्य प्रदेश की स्थिति को समझना अभी बाकी है। सच पूछें तो भारतवर्ष के इतिहास पर देश की भौगोलिक रचना ने यदि कुछ प्रभाव किया है तो उसका सब से अधिक महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त हमें यहां मिलेगा।

हम देख आये हैं कि उत्तर-पश्चिम से यदि कोई शक्ति पंजाब में प्रवेश करे, या पूर्व से पश्चिमको बढने लगे तो नदियों के घाटों के सिवाय उस के मार्ग में कोई और प्राकृतिक रुकावट नहीं है। सफेद कोह से ऊपर के दर्रों से यदि कोई आक्रामक सेना आय तो सिन्ध पार करने पर भी उसे रावलपिंडी के नाके पर रोका जा सकता है। पहले उन दर्रों में, फिर सिंध के घाट पर, फिर नमक की पहाडियों में भाग्य निर्णायक युद्ध होंगे। यदि कोई शक्ति महमूद गजनवी के, लुटेरे दल की तरह गोमल के रास्ते उतरे तो नमक के पहाड उसके मार्ग को नहीं रोकते। ऊपर से आने वाली शक्ति भी जेहलम पारकर खुले मैदान में आ पहुँचती है। इस मैदान में एकमात्र रुकावट नदियां हैं; और नदी के एक घाट से पार न होसकें तो दूसरे से सही। आगे-पीछे, ऊपर-नीचे बढने और मार्ग बदलने के लिए बड़ी गुंजाइश है। एक नदी के सारे तटकी रक्षा की जासकती है, पर उसके लिए बडा प्रबन्ध अपेक्षित है। आक्रामक शक्ति यदि पूर्वसे आनेवाली रुकावटको कमजोर पायगी तो जरूर उसी तरफ बढेगी, उपजाऊ खेत और हरी-भरी चरागाहें उसे अपनी तरफ आकर्षित करेंगी। यदि पूर्व की शक्ति मजबूत हो तोभी पंजाब की नदियों के प्रवाह के साथ साथ आक्रान्ती सिकन्दर की तरह दक्षिण की तरफ झुक सकती हैं, बशर्ते कि उधर का मार्ग भी वैसा ही रक्षित न हो।

किन्तु यदि आक्रामक शक्ति सतलुज के पार तक आसानी से उतर आय तो आगे वह किस किस तरफ बढ सकती है? उत्तर का तो प्रश्न ही नहीं है, उधर हिमालय है। दक्षिण की तरफ अरवली की बढी हुई भुजायें, उनको ढकने वाले सघन वन और मारवाड की मरुभूमि है, इस तरफ यदि वह बढे तो उसे वहाँ

कठिनाइयां झेलनी होगी जो नागोर-मेडता के रास्ते मारवाड पर चढ़ाई करते समय शेरशाह को झेलनी पडी थीं। शेरशाह की अद्वितीय संगठन शक्ति ही इस मार्ग में रसद का प्रबन्ध कर सकती थी। इस दशा में यदि आक्रामक के सामने पूर्व की शक्ति बिलकुल नपुंसक नहीं है तो उसके लिए दो ही मार्ग हैं—या तो सिकन्दर की तरह उलटे पाँव पीछे लौट जाय और नहीं तो युद्ध करे। यहा जो युद्ध होगा वह उसके और भारतवर्ष के भाग्य का निर्णय करेगा। यहाँ विजय पाने से उसके लिए गंगा-जमना के खुले प्रदेश का ही मार्ग न खुल जायगा, अजमेर और मालवा के दक्षिणी मार्गों का पहला दरवाजा भी उसके हाथ आजायगा।

भारतवर्ष के भाग्य का कितनी बार इस भूमि पर निपटारा हुआ है! भारतीय अनुश्रुति के सबसे पहले एक सम्राट् ययाति की सेनायें जब प्रतिष्ठान (प्रयाग) से पश्चिम की तरफ बढी थीं, और उनके पुत्र द्रुह्यु और अनु की सन्तान ने जब पंजाब का विजय किया था * तब अवश्य ही पंजाब की अनार्य जातियों और मानव वंश के धार्ष्टक (मनु के पुत्र धृष्ट की सन्तान जो उस समय पंजाब के वाल्हीक देश में राज्य करती थी) क्षत्रियों के साथ इस भूमि में उनकी मुठ भेड़ हुई होगी। ययाति के बाद दूसरे दिग्विजयी राजा अयोध्या के मान्धाता थे, जो ययाति के समकालीन अयोध्या के राजा पृथु के पन्द्रहवें वंशज थे। उन्होंने सरस्वती के किनारे जो दीर्घ सत्र (यज्ञ) किया था ‡

पार्जीटर—एन्शन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन, पृ० ८६ १७, १०८-०६, २५६-२५८ २५९।

महाभारत, पूर्व, अध्याय १२६ १०४६७ श्लोक।

(वृतीय)

वह निश्चय से किसी विजय के उपलक्ष्य में हुआ होगा। फिर ययाति के सुदूर वंशज हस्तिनापुर के कौरव राजा कुरु का नाम आज तक इसी लिए प्रसिद्ध है कि उन्होंने इस देश को विजय कर इसे अपना क्षेत्र बनाया। सुप्रसिद्ध भारत-युद्ध फिर इसी कुरुक्षेत्र में घटित होता है। इस युद्ध में धार्तराष्ट्रों की तरफ क्षुद्रक, मालव, मद्रक आदि सभी पंजाबी तथा अन्य उदीच्य जातियां थीं, और पांडवों की तरफ मत्स्य, चेदि, काशी, कास्तव पाञ्चाल आदि दिल्ली से दक्षिण की जातियां। इतने मात्र से यद्यपि यह स्पष्ट नहीं होता कि पक्ष-विपक्ष की सेनायें किस प्रकार इस नाके पर आजुटीं, तो भी कुछ न कुछ व्याख्या अवश्य सूझ जाती है।

इतिहास की धारा में और नीचे आने पर हम सिकन्दर को प्राच्यों Praeii के डर से व्यास नदी के तट से ही उलटे पांव लौट कर पंजाब की नदियों के दक्षिणी प्रवाह के साथ साथ सिन्ध की घाटी में उतरता पाते हैं, और सिल्यूकस को चन्द्रगुप्त से उन्हीं दर्रों में पाठ पढता पाते हैं जहां आजकल ब्रिटिश सेनायें अफरीदियों, मोहमन्दों और वजीरियों से मुठभेड किया करती हैं। पुष्यमित्र शुंग के समय में मीनान्डर की सेना बहुत दूर आगे बढ आती है और गार्गी संहिता तथा पातञ्जल महाभाष्य के आधार पर यह कहा जाता है कि उन्होंने पहले साकेत (अयोध्या) और फिर मध्यमिका चित्तौड के पास एक अति प्राचीन वस्ती, आधुनिक "नगरी" पर चढाई की थी। इतिहास इस बात का उल्लेख करे या न करे, भौगोलिक सिद्धान्तों से यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि मीनान्डर को प्राच्यों (मगध के राजाओं) के हाथ गंगा-जमना के दोआब में और फिर कहीं मथुरा के निकट मुँह की खानी पडी होगी, अन्यथा

वह पूर्व के सुगम उपजाऊ प्रदेशों को छोड़ कर अरवली के ऊबड़-खाबड़ जंगलों में मध्यमिका की राह न पकड़ता। पर इतना निश्चित है कि प्राच्य शक्ति उसे जमना पार कुरुक्षेत्र की परली तरफ तक न खदेड़ सकी, जिससे सिकन्दर की तरह उसे उलटे पाँव विहात (जेहलम) तक लौटना पड़ता। दक्षिण का राजपूताना मालवा वाला मार्ग उसके हाथ में रहा और कुछ कुछ वैसी ही दशा हो गई जैसी शेरशाह के हुमायूं को देहली से खदेड़ देने पर हुमायूं के कुछ फौज के ग्वालियर और मालवा में रह जाने से हुई थी। अग्निमित्र के हाथ जब तक ये "दुष्टा विक्रान्ता यवन" सिन्धु (राजपूताने की काली सिन्ध) के किनारे हारे नहीं तब तक यह यवन "खतरा" दूर नहीं होने पाया। इस प्रकार मीनान्डर के आक्रमण की घटनाओं का पूरा पूरा पारस्परिक सम्बन्ध हम भौगोलिक सिद्धान्तों की सहायता से समझ सकते हैं, यद्यपि इतिहास के ग्रन्थों में उस घटना का उल्लेख बिलकुल थोड़ा और अस्पष्ट है।

यूनानियों के बाद शकों और यूचियों के टिड्डी-दल पंजाब और मथुरा से कच्छ, काठियावाड़ और कोङ्कण का मार्ग पकड़ लेते हैं, इसका अर्थ यही है कि उन दिनों पूर्वी शक्ति अच्छी मजबूत थी।

मुसलमानी काल में हम उत्तर-पश्चिम की सेनाओं को इस जलविभाजक के रास्ते पूर्वी मैदान में उसी प्रकार उतरता पाते हैं जैसे आर्यकाल में पूर्वी सेनाओं को पश्चिम जाते देखा था। पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी के भाग्यनिर्णायक सग्राम ने तरावड़ी की रक्तरञ्जित भूमि को इतना प्रसिद्ध कर दिया है कि आज भी कुरुक्षेत्र के जाट किसी पर बहुत क्रुद्ध

होते हैं तो उसे तरावडी के घाट उतार देने की धमकी देते हैं। बाबर के भाग्य का पहला फैसला हुआ फिर उसी तरावडी से तीस मील दक्षिण पानीपत की भूमि में, और दूसरा मथुरा से कुछ ही नीचे राजस्थान के पथार के उत्तरी द्वार खानवा में। यदि खानवा में राना सांगा की जीत होती और दोनों पक्षों में लड़ने की शक्ति बची रहती तो पजाब की तरफ भाग निकलने से पहले पानीपत के करीब करीब कहीं न कहीं हठी बाबर मुँह फेरकर एक बार फिर अपने भाग्य को आजमाता।

हमारे देश के भाग्य का अन्तिम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय फिर इसी पानीपत पर होता है। इस बार का मुकाबिला वायव्य और पूर्वी शक्तियों में नहीं, वायव्य और दक्षिणी शक्तियों में था। पेशवाओं ने अबदाली के पैरों की आहट सुनते ही अटक और लाहौर के किलों से गेरुआ झडा उतार लिया था, किन्तु वे इतने निर्बल न थे कि पानीपत के द्वार को भी बिना लडे सौंप देते और नर्मदा के घाटों पर शत्रु की प्रतीक्षा करते। इस लडाई के निर्णय ने दोनो पक्षों की शक्ति पर जो प्रभाव किया वह चिरस्थायी न भी रहता, किन्तु इसी समय बगाल के मैदान से नवोत्थित शक्ति चौकन्नी होकर इस युद्ध की गति को ताक रही थी, और इन पक्षों की क्षीणता में वह वृद्धि का अवसर उसके हाथ लग गया जिसे काबू करके आज वह भारतवर्ष की स्वामिनी बन चुकी है।

सदाशिवराव की लौटती सेना के साथ साथ हमें भी अब विन्ध्य मेखला और महाराष्ट्र के पथरीले पहाडी प्रदेशों का निरीक्षण करना होगा।

[५] विन्ध्य-मेखला

जिसे हम मध्य भारत की संज्ञा दे आये हैं उस प्रदेश में विन्ध्याचल की मेखला और गुजरात की सौम्य भूमि सम्मलित है। कच्छ के रण और लूनी नदी के दक्षिण को, आबू, अरवली, विन्ध्य और सातपुडा की उपत्यका से बचते हुए तापी पार कर सूरत के कुछ नीचे तक जहां तक कि मैदान एकदम तंग नहीं हो जाता, गुजरात का प्रदेश है।

गुजरात का मैदान बगाल के ठीक सामने है, और उसे उत्तरी भारत का अंश मानने में भी कोई आपत्ति न होती यदि राजपूताना का रेगिस्तान इसे सिन्ध से अलग न करता होता और अरवली की ऊपर बढी हुई भुजा गगा-जमना प्रदेश से। प्राचीन काल में जब राजस्थान की मरु भूमि एक उथला समुद्र थी, गुजरात का उत्तर भारत के साथ होने का भ्रम किसी को नक्शे पर भी न हो सकता था। दक्षिण से भी वह स्पष्टतः अलग है। वास्तव में वह विन्ध्याचल अरवली और सातपुडा की बगल में शरण पाये हुए उन्हीं का पश्चिमी आँचल या तट है।

इन पर्वतों की किला बन्दी में सुरक्षित रहने और पश्चिमी* सागर के सामने खुला होने के कारण व्यापारिक दृष्टि से

* जिसे आजकल अंग्रेजों की नकल कर हम लोग अरब सागर कहने लग पड़े है, उसे अपना नाम देने का काठियावाड को उतना ही अधिकार है जितना अरब को। प्राचीन यूनानी और रोमन इसे जो कुछ कहते थे उसका अंग्रेजी अनुवाद Erythorasan sea, होता है। हमारे पूर्वज इसके

गुजरात का बडा महत्त्व है। उसका विस्तृत समुद्र तट उसे विदेशी व्यापार के लिए खूब अनुकूल बनाता है, द्वारिका वेरावल पत्तन (सोमनाथ मन्दिर वाला बन्दरगाह) भरुच (प्राचीन भृगुकच्छ या भरुकच्छ) सूरत (प्राचीन सूर्यपुर) अति प्राचीन काल से विदेशी व्यापार, के केन्द्र रहे हैं। अपने शरण दाता पर्वतों के एहसान को गुजरात पूरी तरह चुका देता है, उनके पहाडी घाटों में जितनी व्यापारिक वस्तियां हैं सब उसी की कृपा का फल हैं, गुजरात और उत्तर-दक्षिण के व्यापार को जोडने से ही उनका जीवन है।

गुजरात उपरला भाग, विशेषत कच्छ, राजस्थान की मरुभूमि से मिलता है। काठियावाड भी लगभग शुष्क है यद्यपि वह अपनी छोटी छोटी धाराओं के लिए प्रसिद्ध है*। किन्तु साबरमती, मही, रेवा (नर्मदा) और तापी के "काठों" की भूमि गगा-जमना दोआब की तरह सुजला, सुफला, शस्यश्यामला है। नर्मदा और तापी के बीच के ओर नीचे के मैदान की यही दक्षिण भारत की तरह काली मही है। पहाडों के चरणों में

लिए पश्चिम पयोधि या इसके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करते थे। "बगाल की खाडी का पुराना नाम इसी तरह पूर्वी सागर था। हिन्दी लेखकों का इस प्रकार अपने प्राचीन नामों को छोड कर अपने ही देश की वस्तुओं को नये नाम देना, मानो अग्रेजों से ही हमने उनकी सत्ता का पता पहली बार पाया हो, हमें उचित और अनुकरणीय नहीं जॅचता।

* पञ्च रत्नानि सौराष्ट्रे नदी नारी तुरङ्गम.।
चतुर्थं सोमनाथश्च पञ्चम हरिदर्शनम् ॥
(रासमाला में उद्धृत एक प्राचीन श्लोक)

रहने के कारण यह तंग मैदान भी सपाट, खुला और समथर नहीं, प्रत्युत टूटा-फूटा, ऊँचा नीचा और ऊबड खाबड है। गिरनार के एकाकी शिखर चयके सिवाय गुजरात के अन्दर कोई नाम लेने लायक "डूंगर" (पहाड) नहीं है।

अरवली, विन्ध्य और सातपुडा की बगल में छिपा रहने के कारण गुजरात की छाती रण क्रूर योद्धाओं के घोडों की टापों से उस प्रकार नहीं कुचली गई जिस प्रकार उत्तर भारत की। राजपूताना और मालवा को भली प्रकार हस्तगत किये बिना उत्तर भारत की कोई शक्ति गुजरात पर हाथ नहीं बढ़ा सकती। भारतीय इतिहास का पहला पर्दा खुलते ही हम मनु महाराज के पुत्र शर्याति के वशजों को इस प्रदेश पर अधिकार करता पाते हैं, उन्हीं के वशजों के नाम पर इस देश को आवर्त्त नाम मिलता है, और रेवा और रैवत-गिरि (जूनागढ के पहाड) का नामकरण होता है। किन्तु उत्तर भारत से सम्बन्ध न रहने के कारण यह अगुआ दल पुण्यजन राक्षसों का शिकार बनता है*। यादव और हैहय लोग जब तक मालवा पर पूरी तरह अधिकार करके इसे फिर से नहीं जीतते इसमें आर्य सत्ता स्थिर नहीं होती। इस समय भी राजपूताना में अनार्य आभीरों के अड्डे थे, यद्यपि अर्बुद-गिरि (आबू) के आस पास शाल्व देश में मार्त्तिकावत में यादव राज्य स्थापित हो चुका था। गुजरात के यादव जब भ्रातृयुद्ध से अपने वश का नाश कर लेते हैं, और अर्जुन पाण्डव उन्हें उत्तर भारत में वापिस लाते हैं, तब भी इस

* पार्जीटर, कृत एन्शन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रैडीशन, पृ० ६७८, २५६-७।

लौटते दल को रास्ते में आभीरों का मुकाबला करना पड़ा था।† किन्तु इसके बावजूद, व्यावहारिक दृष्टि से गुजरात और महाराष्ट्र तक का प्रदेश इस समय आर्य हो चुका था।

अगले इतिहास में जब कभी उत्तर भारत में साम्राज्य स्थापित होता है, गुजरात उसमें सब से पीछे सम्मिलित होने वाला और उसके टूटने के समय सब से पहले अलग होने वाला प्रान्त होता है। मौर्य, गुप्त और वर्धन साम्राज्यों के विनाश की कहानी पूर्ण नहीं है, पर इतनी बात उनमें दीख पड़ती है। दसवीं शताब्दी के कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों के साम्राज्य के सब से पहले अलग होने वाला प्रान्त गुजरात था। ९७३ विक्रमी में राष्ट्रकूट राजा इन्द्र कन्नौज के महीपाल को हराता है, और उसके २५-२६ साल बाद हम गुजरात के शासक मूलराज सोलंकी को स्वतन्त्र हुआ पाते हैं।

मुसलमानी युग के आरम्भ में शाहबुद्दीन गौरी ने उत्तर भारत को लिये बिना, सिन्ध की तरफ से, शायद महमूद गजनवी का अनुकरण करते हुए उतावलेपन में गुजरात पर हमला कर दिया था। भारतीय इतिहास के पाठ्य ग्रन्थों में हमारे बालकों को अपनी जाति की हारों के वृत्तान्त पूरे विस्तार से पढ़ाये जाते हैं, पर जीत की घटना आने पर ग्रन्थ लेखक आँखें मूंद लेते हैं। मुहम्मद गोरी के सन ११७८ के इस आक्रमण में गुजरात के नाबालिग राजा मूलराज दूसरे की माता ने उसे बुरी हार दी थी, और उसके बाद जो घटना हुई थी वह यदि नवीन शुद्धि आन्दोलन के सचालकों को मालूम होती तो आज सैंकड़ों वेदियों से और बीसियों पत्रों के स्तम्भों में

† वहीं, पृ० २८४।

हराई गई होती। गोरी की कैदी सेना में से ऊँचे दर्जे के मुसलमानों को दाढ़ी मूँछ मुड़वा कर राजपूतों में शामिल कर लिया गया था, और साधारण सिपाहियों को उसी प्रकार कोलियों, खारों खाखियों और मेडों में। ※

गोरी के सौ साल पीछे रणथम्भोर, चित्तौड़ और मालवा के मुख्य क़िलों को हथिया चुकने के बाद अलाउद्दीन की ऐसी स्थिति थी कि वह "करण घेलों" से उसका राज्य आसानी से छीन सकता था। अकबर ने जब गुजरात जीता, तभी अजमेर का रास्ता पूरी तरह उसके क़ाबू में था, और मालवा भी वह ले चुका था।

किन्तु उत्तर की अपेक्षा दक्षिण के विजेताओं के लिए गुजरात अधिक खुला है। सातवीं विक्रम शताब्दी के बाद सोलंकियों, फिर राष्ट्रकूटों और अठारहवीं सदी में मराठों का दक्षिण से बहता प्रवाह इस के उदाहरण हैं।

※ बॉम्बे गजेटीयर १८९६ का, जिल्द १, भाग १ का दूसरा खण्ड, मुसलमानी काल का गुजरात का इतिहास कर्नल वाट-सन तथा पांसाटेव फजलुल्लाह लतफुल्लाह फरीदी कृत एक दो विद्वानों ने यह बात "तारीख-सोरठ" से ली है। तारीख ए सोरठ के लेखक जूनागढ़ के मुस्लिम राज्य के दीवान अमरजी रणछोड़ जी थे। ग्रन्थ यद्यपि नवीन है, पर प्राचीन सामग्री पर आश्रित है। लेखक का मण्डलीकराज्य पर (ना० प्र० पत्रिका, भाग३, अङ्क३ में) लेख देखिये।

नागरी प्रचारणी पत्रिका, भाग १,पृ२०७ आदि। श्रद्धेय ओझा जी ने इतिहास के ये छोटे छोटे टुकड़े इकट्ठे किये हैं, उन से सोलंकियों के दक्षिण से गुजरात जाने की सामान्य घटना स्पष्टत सिद्ध होती है।

गुजरात के सिवाय शेष समूचा मध्य भारत पहाड़ों पथारों का बना हुआ है। इस सारी शृंखला को हम ि मेखला कह सकते हैं, यद्यपि विन्ध्याचल प्राचीन काल में के केवल पश्चिमी भाग का नाम था, पहिला भाग जिससे मती (केन) नदी निकली है शुक्तिमान् कहलाता था, और पूर्व-दक्षिण में छत्तीसगढ से छूता हुआ पर्वतीय भाग कहलाता था। वास्तव में विन्ध्य से पारसनाथ तक शृंखला है, यद्यपि नर्मदा इस के पश्चिमी भाग को दो करके विन्ध्य और शुक्तिमान् को महादेव और मेकल से अलग कर देती है। अरवली भी विन्ध्य का ही उसी की आगे बढी हुई भुजा है, जिसकी शाखायें ठीक और आगरा के नीचे फतहपुर सीकरी तक पहुंची हैं। तीय मेखला उत्तर भारत के मैदान को दक्खिन से करती है, और इस के सम्बन्ध में समझने की बात यही उत्तर तथा दक्खिन को मिलाने के लिए कौन कौन से रास्ते इसके बीच में से गये हैं, तथा उनकी स्थिति का मध्यवर्त्ती प्रदेश के इतिहास पर क्या प्रभाव होता पंजाब से सिन्ध होकर गुजरात और कोंकण तक मैदान में चले जाना नक्शे पर बहुत सुगम दिखाई देता है, रहे कि पश्चिमी राजस्थान की मरुभूमि सिन्ध और गुज के बीच में पड़ती है, और इस लिए पंजाब से दक्खिन वाला यात्री देहली के रास्ते जाना ही पसन्द करता है। फलत तट के मार्ग के सिवाय उत्तर दक्खिन को मिलाने वाला कोई सुगम मार्ग नहीं है जो इस पर्वतीय मेखला को कर न जाय।

सेनायें अजमेर के रास्ते ही गई होंगी। निःसन्देह वे से देहली जाने के बदले पूर्व को झुक गई होंगी, जैसे कल बांदीकुई को आगरा से मिलाने वाली रेलवे झुकती है। चित्तौड के महारानाओं की शक्ति जब कभी अजमेर उनके काबू में रहा, और सम्राज्यकामी मालदेव अजमेर के ठीक ऊपर तारागढ की किलाबन्दी करवाना भूल न गया था। दिल्ली की शक्ति जब राजस्थान में दखल करने का इरादा बांधेगी, अजमेर की चाबी को हथियाना उसके लिए भी आवश्यक होगा। अद्वितीय रणनीतिज्ञ और राजनीतिज्ञ शेरशाह ने मालदेव को हराने के बाद अजमेर को अपने सीधे अधिकार में रखना आवश्यक समझा था, अकबर के जमाने से फिर राजपूताना का यही भाग सीधा शाह अधिकार में था, और आज कल भी राजस्थान की पीतिमा यही भाग खूनी ब्रिटिश रंग से रंगा हुआ है। इस भाग को लेना राजस्थान के रजवाड़ो से उत्तर भारत को सुरक्षित कर लेने के लिए काफी है, उन्हें अपने सीधे अधिकार में लाकर ख्वाहमख्वाह उभाड देने के खतरे से शेरशाह, अकबर और अंग्रेज सभी बचते रहे हैं, क्योंकि यह खतरा न केवल भयंकर प्रत्युत अनावश्यक भी होता। अकबर की गुजरात पर चढाई अजमेर और सिरोही के रास्ते ही हुई थी, इसी चढाई में अकबर ने वह क्षिप्रगामिता दिखलाई थी जिसका मुकाबिला संसार के इतिहास में कभी और कहीं नहीं हुआ। किन्तु अहमदाबाद पर आक्रमण करने से पहले अजमेर पर पूरा काबू रखने का पक्का प्रबन्ध अकबर ने कर लिया था।

दुर्गादास और महाराना राजसिंह की नायकता में जब मारवाड़ और मेवाड दोनों औरंगजेब के विरुद्ध उठ खड़े हुए

सेनायें अजमेर के रास्ते ही गई होंगी। निःसन्देह वे अजमेर से देहली जाने के बदले पूर्व को झुक गई होंगी, जैसे आज कल बांदीकुई को आगरा से मिलाने वाली रेलवे शाखा झुकती है। चित्तौड के महारानाओं की शक्ति जब कभी बढ़ा अजमेर उनके काबू में रहा, और सम्राज्यकामी मालदेव भी अजमेर के ठीक ऊपर तारागढ का किलाबन्दी करवाना भूल न गया था। दिल्ली की शक्ति जब राजस्थान में दखल करने का इरादा बाधेगी, अजमेर की चाबी को हथियाना उसके लिए भी आवश्यक होगा। अद्वितीय रणनीतिज्ञ और राज नीतिज्ञ शेरशाह ने मालदेव को हराने के बाद अजमेर को अपने सीधे अधिकार में रखना आवश्यक समझा था, अकबर के जमाने से फिर राजपूताना का यही भाग सीधा शाही अधिकार में था, और आज कल भी राजस्थान की पीतिमा में यही भाग खूनी ब्रिटिश रंग से रंगा हुआ है। इस भाग को ले लेना राजस्थान के रजवाडों से उत्तर भारत को सुरक्षित कर लेने के लिए काफी है, उन्हें अपने सीधे अधिकार में लाकर स्याहसफेद उभाड देने के खतरे से शेरशाह, अकबर और अंग्रेज सभी बचते रहे है, क्योंकि यह खतरा न केवल भयंकर प्रत्युत अनावश्यक भी होता। अकबर की गुजरात पर चढाई अजमेर और सिरोही के रास्ते ही हुई थी, इसी चढ़ाई में अकबर ने वह क्षिप्रगामिता दिखलाई थी जिसका मुकाबिला संसार के इतिहास में कभी और कहीं नहीं हुआ। किन्तु अहमदाबाद पर आक्रमण करने से पहले अजमेर पर पूरा काबू रखने का पक्का प्रबन्ध अकबर ने कर लिया था।

दुर्गादास और महाराना राजसिंह की नायकता में जब मारवाड और मेवाड दोनों औरंगजेब के विरुद्ध उठ खडे हुए

थे; तब अजमेर ही का रास्ता मुगलों के हाथ में था, मारवाड़ और मेवाड़ के विरुद्ध लड़ने वाली शाही सेनाओं में इसी के द्वारा सम्बन्ध रहता था। दोनों राजपूत राज्यों का परस्पर सम्बन्ध अजमेर के दक्षिण की अरवली की अनेक जंगली घाटियों पर आश्रित था। चित्तोड़ की अपेक्षा उदयपुर अधिक पहाड़ों के अन्दर, पश्चिम की तरफ है। गोगूंदा और अन्दर को है, तथा राणा कुम्भ का बसाया कुम्भलमेर बिलकुल अरवली के गर्भ में है। राणा प्रताप के समय पूर्व से ज्यों ज्यों शत्रु का दबाव पड़ता वे पश्चिम को हटते जाते थे। इस बार पूर्व में उदयपुर तक दुश्मन ने आसानी से लेलिया था, और उसके आगे जहां शाहजादा आजम को पश्चिम के पहाड़ों में बढ़ने का आदेश था, वहां मारवाड़ की तरफ से युवराज अकबर को देवसुरी घाटे से कुम्भलमेर तक पहुंचने की आज्ञा थी। राजपूत शेर की इस अन्तिम गुफा पर मुगल हमला करते डरते थे, फिरभी जब अकबर और तहव्वरखां को औरंगजेब ने विवश कर के आगे धकेला तब राजपूतों को दण्ड के स्थान में भेद-नीति का अवलम्बन करना पड़ा था।

राजपूताना का किस्सा छोड़िये। देहली से जमना के साथ साथ जरा नीचे उतर कर मथुरा वा आगरा से, अथवा चम्बल पार कर ग्वालियर से चम्बल की घाटी में हो लें, और उज्जैन के करीब विन्ध्याचल को पार कर पचमहल होते हुए मही की अथवा नर्मदा की घाटी में पहुंच जायें, तो हम उत्तर दक्खिन को मिलाने वाले सबसे प्रसिद्ध और सबसे बड़े मार्ग को माप लेंगे। यदि पहले मार्ग को राजपूताना का कहें तो इसे मालवा का कह सकते हैं। इसी मार्ग को काबू करने

के कारण प्राचीन काल से उज्जयिनी(उज्जैन)का इतना महत्त्व रहा है। महाराज यदु की सन्तान (यादवों और हैहयों)ने विदिशा (बेसनगर)में स्थापित होने के बाद इसी मार्ग से विन्ध्याचल पार कर माहिष्मती(नर्मदा के मध्य में एक द्वीप,आधुनिक मान्धाता) तक विजय किया था। सातपुड़ा के नीचे विदर्भ (बरार) और निषध देश (बरार के पश्चिम का पहाड़ी प्रान्त) इसके दस, पन्द्रह पीढ़ी बाद जीता गया, किन्तु उन्हें लेने से पहले शक्तिमान्, मृत्तिकावती (प्रयाग के दक्षिण के पहाड़ों में एक प्राचीन नगरी) और मेकलपर्वत में यादवों के राज्य स्थापित हो चुके थे* जिसका यह अर्थ है कि विन्ध्याचल का पूर्वी (आधुनिक बुन्देलखण्ड वाला) मार्ग भी उनके हाथ में था, और इसलिए विदर्भ और निषध को लेनेवाली सेनाओं ने मालवा और बुन्देलखण्ड दोनों में से किसी वा दोनों मार्गों का प्रयोग किया होगा।

इस पूर्वी मार्ग का वर्णन हम अभी करेंगे। प्रतीत होता है, आर्य युग में मुस्लिम जमाने की अपेक्षा इसका प्रयोग अधिक होता था। किन्तु फिर भी अवन्ति (मालवा) वाला मार्ग भी कम महत्त्व का न था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय से मगध-साम्राज्य की तरफ से दक्षिण पश्चिम भारत के लिए जो राष्ट्रिक (गवर्नर शासक) भेजा जाता था वह उज्जयिनी में ही रहता था। ईसा की पहली शताब्दी में जो अज्ञातनामा सूक्ष्मदर्शी

* पार्जीटर, पृ० २६६, २६८, २७३।

रोमन व्यापारी अपनी "इरीथ्रियन सागर" की परिक्रमा* का वृत्तान्त लिख गया है, उसके समय में भी Soupara (शूर्पारक या तो सूरत या उससे सो एक मोल नीचे को एक बन्दरगाह) और Barygaza(मरुकच्छ वा भृगुकच्छ आधुनिक भरुच)से व्यापार को धारा Oozane(उज्जैन)होकर ही उत्तर भारत तक पहुंचती थी। और तो और, कालिदास अपने व्योमचारी मेघ को भी विरही यक्ष का सन्देश लेजाने के लिए यही मार्ग बतलाते हैं। विन्ध्याचल पार कर यद्यपि पहले उसे दशार्ण देश (बेतवा और केन के बीच) तथा वेत्रवती (बेतवा) की तरफ जाने का आदेश देते हैं, तो भी वहां से लौटाकर फिर उज्जयिनी और दशपुर† की राह दिखाते हैं।

मुस्लिम जमाने में तो मालवा का मार्ग प्राय उत्तर-दक्षिण के बीच एक मात्र मार्ग रहा है। विन्ध्याचल का पूर्वी भाग मुसलमानों के हाथ बहुत कम आया है। झाडखण्ड के पहाड़ी आंचल पर शेरखां ने जब रोहतासगढ़ को लिया तो मुस्लिम जगत् के लिये एक बिलकुल नई अनोखी बात हो गई थी, अकबर की जो सेना आसफखां की अधीनता में वीर रानी दुर्गावती से गढ़ और मडला के बीच कहीं लड़ी थी, और फिर उसके

---

* इस अमूल्य पुस्तक का अत्युत्तम अनुवाद Schoff ने Periplus of the Erythraean sea नाम से किया है। पश्चिम भारत के तत्कालीन व्यापार की ज़रा ज़रा बात इस में मिलती है।

†आधुनिक दासोर, फ़ारसी और अंग्रेजी लेखकों का मन्दसोर। उज्जैन से अजमेर जाने वाले मार्ग को काबू करता है।

पुन के खिलाफ जिसने चौरागढ के किले को घेरा था, वह शायद पहली मुस्लिम सेना थी जिसने बुन्देलखड के रास्ते विन्ध्यमेखला को एक छोर से दूसरे छोर तक पार किया था। किन्तु इसके बाद भी शाहजहां के समय तक इस प्रदेश पर मुस्लिम अधिकार स्थिर नही होता। शाहजहा के जमाने में जब मुगल सेनायें, जुझारसिंह का पीछा करते हुए ओडछा, धामुनी और चौरागढ़ लेकर चांदा के गोंड राजा की सीमाओं तक जा निकलती है, तब यह कहना चाहिए कि बुन्देलखड का दक्षिणी मार्ग पूरी तरह मुगलों के हाथ आगया था। अकबर से पहले यदि किन्हीं मुसलमान बादशाहों ने बुन्देलखंड के उत्तरी तट पर, महोबा, कालिंजर आदि को अपने अधिकार में किया था तो केवल अपने उत्तर-भारतीय साम्राज्य के दक्षिणी तट को सुरक्षित करने के लिए, न कि बुन्देलखड के रास्ते दक्षिण भारत में प्रवेश करने के लिए। पश्चिम की तरफ राजपूताना केवल अलाउद्दीन खिलजी के समय "पठान" बादशाहों के हाथ आया था, और जहांगीर शाहजहां के समय मुगलों के। राजपूताना और बुन्देलखड के बीच मालवा का ही राजपथ था जो मुसलमान बादशाहों की फौजों के लिए अलाउद्दीन खिलजी के जमाने से दक्खिन जाने का मुख्य मार्ग रहा। पहला देहलवी साम्राज्य टूटने पर बाबर ने उत्तर भारत में साम्राज्य स्थापित करना चाहा तब पानीपत के विजय के बाद सबसे पहले उसने इसी ओर ध्यान दिया, और इसी मालवा-मार्ग के उत्तरी द्वार पर खानवा में उसकी राणा सागा से अविस्मरणीय लडाई हुई। बाबर के बेटे से, बहादुरशाह मालवा छीन लिया चाहता था, पर वह भी उसके सामरिक महत्व को समझता और उसे छोडने को कभी तैयार न था। शेरशाह ने उत्तर भारत से हुमायू को खदेड दिया तो

सबसे पहले उसे भी मालवा की चिन्ता करनी पड़ी थी। अकबर ने बंगाल जीतने से पहले मालवा लिया था। औरंगजेब ने दक्खिन से अपने बाप के विरुद्ध प्रयाण इसी रास्ते से किया था, और नर्मदा पार कर उज्जैन के पास ही धर्मट में उसे जसवन्तसिंह से मुकाबला करना पड़ा था। आजकल बम्बई-बड़ौदा-सैन्ट्रल इण्डिया-रेलवे का देहली से बम्बई जाने का 'लघुतम और क्षिप्रतम" (shortest and quickest) मार्ग यही है। मध्य भारतीय रियासतों की पिलाहट में ब्रिटिश दकिमा से रक्षित मऊ छावनी इस मार्ग को ठीक पहाड़ी नाके पर काबू करती है। देहली अजमेर-अहमदाबाद लाइन को हम राजपूताना मार्ग कह चुके हैं। अजमेर से चित्तौड़गढ़ की छाया में होकर इन्दौर तक, नसीराबाद, नीमच, मऊ और इन्दौर की छावनियों को मिलाने के लिए जो लाइन गई है, वह उक्त दोनों मार्गों को मिलाती और राजपूताना से मालवा जाने के मार्ग को सूचित करती है। हुमायूं और बहादुरशाह गुजराती की मुठभेड़ इसी मार्ग में दासोर पर हुई थी।

ध्यान रहे कि कुरुक्षेत्र पानीपत प्रदेश का जैसा महत्व पंजाब और गंगा-जमुना प्रदेश के बीच में होने से है, वैसा ही महत्व पंजाब और दक्खिन के इन दो मार्गों के बीच में होने से भी है। राजपूताना, मालवा के ठीक सिर पर रहने से उस प्रदेश का गौरव द्विगुणित हो जाता है।

गंगा-यमुना-प्रदेश में देहली आगरा से और नीचे कानपुर-प्रयाग के करीब तक उतर कर दक्खिन की तरफ देखने लगें तो बेतवा और केन की धारायें हमें एक और मार्ग का संकेत करती हैं। केन और सोन के बीच 'विन्ध्यमेखला

की चौडाई कम रह गई है, और यदि यहाँ हम इसे पार कर लें तो नर्मदा को घाटी में शीघ्र प्रवेश कर सकते हैं। पहले दोनों मार्ग नर्मदा के कांठे के पश्चिमी भाग में जा निकलते थे, यह मार्ग शुरू से ही नर्मदा के साथ हो लेता है। और पचमढी की छाया में नर्मदा के साथ साथ जाते हुए यदि महादेव पहाडियों और सातपुडा के बीच में खँडवा की ओर झुककर ताप्ती के प्रसिद्ध घाट बुरहानपुर पर आनिकलें, तो इसी मार्ग से दाहिनी तरफ सीधे बरार और खानदेश को तथा बाई तरफ वर्धा और गोदावरी के साथ साथ आन्ध्रदेश को जाने का रास्ता दिखाई देता है। ठीक इसी मार्ग से भगवान रामचन्द्र अयोध्या से दण्डकारण्य तक आये थे। प्रयाग के सामने शृंगवेरपुर पर गंगा पार कर प्रयाग चित्रकूट होते हुए वे नर्मदा की घाटी में पहुँचे थे, और वहां से ज़रा पश्चिम का चक्कर लगा फिर पूर्व की ओर गोदावरी के साथ साथ समुद्र तट पर राक्षसों की बस्ती जनस्थान तक। जनस्थान से किष्किन्धा के मार्ग को कृष्णा की धारा सूचित करती है, किष्किन्धा से लंका जाने के लिए सम्भवत उन्हों ने कावेरी का साथ लिया होगा।

श्रीराम से बहुत पहले उनके प्रसिद्ध पूर्वज मान्धाता के पुत्र मुचुकुन्द ने विन्ध्य और ऋक्ष (सातपुडा) पर्वतों के बीच रेवा के मध्य में माहिष्मती (आधुनिक मान्धाता) नगरी की स्थापना की थी, और मुचुकुन्द के भाई पुरुकुत्स की महारानी नर्मदा के नाम से ही शायद रेवा नदी को नर्मदा नाम मिला था*। प्रयाग से नीचे उतर कर भनरंर † शृंखला

*पार्जीटर पृष्ठ २६२

† अंग्रेजी में यों लिखा होता है। इस का ठीक उच्चारण क्या है?

को पार कर नर्मदा घाटी में आने के बाद यदि नर्मदा के निकास की तरफ पूर्व दक्षिण को झुक जायें तो मेकल शृंखला तक जा पहुँचते हैं। नर्मदा और वेणगंगा के बीच में पहाड़ी गर्दन यहां भी काफी पतली है। मान्धाता के सत्रह पीढ़ी पीछे, और महाराज सगर के समय से कुछ पहले, यादव राजा ज्यामघ ने शुक्तिमान पर्वत को अपना आधार बना कर वत्स-भूमि‡ के दक्षिण भुक्तिकावती और मेकल को जीता था -- तथा उनके पुत्र विदर्भ ने बरार प्रदेश को जीत कर अपना नाम दिया था। इस प्रकार हम आर्य क्षत्रियों को *विन्ध्य-मेखला* के पश्चिम से पूर्व की ओर क्रमश बढ़ता पाते हैं। राजा विदर्भ के समय तक सोन के पूर्व के भाग को छोड़ कर मध्यभारत की सम्पूर्ण पर्वतीय शृंखला उनके आधीन हो चुकी थी।

उत्तर-दक्खिन के इस तीसरे राजपथ का, जिसे कि हम बुन्देलखण्ड का मार्ग कह सकते हैं, प्राचीन आर्यकाल में बहुत प्रयोग होता था, क्योंकि उत्तर भारत के बड़े बड़े आर्यराज्य मध्य देश (पंजाब और बंगाल के बीच के प्रदेश, ठेठ हिन्दुस्तान) में ही थे। महाभारत युद्ध के समय आर्य राज्यों का गुरुता-केन्द्र निःसन्देह उत्तर में हस्तिनापुर (आधुनिक जिला बिजनौर में) और इन्द्रप्रस्थ की तरफ झुक जाता है, किन्तु बुद्ध भगवान् के समय से गुप्त राजाओं के समय तक हम उसे फिर मगध में ही पाते हैं। इस लम्बे युग में मगध-साम्राज्य की सेनाओं

‡ प्रयाग के आस-पास का देश कौशाम्बी (प्रयाग जिले में आधुनिक कोसम) इस की राजधानी थी।

-- पार्जीटर पृ० २६६

के लिए यह राजपथ सदा काम देता रहा होगा। राजपूत काल में उत्तर भारत का केन्द्र फिर कन्नौज था, बुन्देलखण्ड का चण्डेल्ल (चन्देले) राजपूतों का राज्य, जो इस समय से जेजाकभुक्ति (आधुनिक जभौती) कहलाने लगता है, कन्नौज का राजनीति में लगातार दखल देता है, और उसके दक्षिण में कलचुरि राजपूतों के चेदि राज्य का नाम भी कन्नौज की लड़ाइयों और मैत्रियों के इतिहास में लगातार सुनाई देता है। इन राज्यों के इतने घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध और इनकी लड़ाइयों को निबाहने के लिए बुन्देलखण्ड का मार्ग लगातार काम देता रहा होगा। ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद गजनवी के झपटों के साथ साथ उत्तर भारत को जब चोल-सम्राटों के आक्रमण भी झेलने पड़ते हैं, और राजेन्द्र चोल अपने हाथियों को गंगा में स्नान कराके गंगैकोण्ड की पदवी लेता है, तब इन सम्राटों की सेनाओं ने शायद ठीक उसी मार्ग को रौंदा होगा जो कई हजार बरस पहले भगवान् रामचन्द्र के चरणों से अंकित हुआ था। किन्तु मुसलमान बादशाह बुन्देलखंड के उत्तरी छोर पर ही मंडलाते रहे, और अकबर की जिस फौज ने आसफखां की नायकता में रानी दुर्गावती का पीछा किया था वह शायद पहले देहलवी सेना थी जिसने भनरेर की पहाड़ी शृंखला को पार किया था।

गंगा के मैदान में जरा और पूर्व को विहार में चले आइए। यहां से दक्षिण को देखिए। पहाड़ी शृंखला सोन से पारसनाथ के चरणों तक अविच्छिन्न रूप से चली गई है। कोई अच्छा रास्ता बीच में नहीं दीखता। इसे यहां पार करने का यत्न करना निरी मूर्खता होगी, क्योंकि जरा और पूर्व को बंगाल की शस्यश्यामला भूमि में उतर कर आप उड़ीसा के रास्ते मैदान

ही मैदान में चलते हुए दक्खिन पहुँच सकते हैं। झाड़खंड या छोटा नागपुर का यह पथार इस प्रकार बड़े बड़े राजपथों की बगल में रह जाता है। विजेताओं की धाराओं ने कभी इस प्रदेश को प्रवाहित नहीं किया, क्योंकि उनके प्रवाह के बहने के लिए और आसान रास्ते हैं। यही कारण है कि भारतवर्ष के प्राचीनतम असभ्य निवासी इतिहास के प्रवाह से छिड़े बिना इसी प्रदेश में अपने प्रागैतिहासिक रूप में अब तक विद्यमान हैं।

जिस समय यादव वंश के आर्य क्षत्रियों ने मेकल, विदर्भ और निषध देश को जीता उसके कुछ ही समय पीछे पूर्वी आनव (यदु के भाई अनु के वंशज) क्षत्रियों का प्रवाह अंगदेश (भागलपुर) से उमड़ कर उत्कल के तट (कलिंग) तक पहुंचा था। उन्हीं के राजाओं के नाम पर इन प्रदेशों के नाम अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिङ्ग हुए थे। विन्ध्यमेखला के पश्चिमी तट से लगाकर मेकल तक के आर्यों के अधिकार में आने का पीछे उल्लेख हो चुका है। मेकल और सुह्म (हुगली और मिदनापुर) के बीच का प्रदेश इस प्रकार आर्य प्रवाह में निमग्न नहीं होता।

अति प्राचीन आर्यों के सामने मुसलमानों का प्रवाह भी इस ऊचे पथार को डुबो नहीं पाता। शेरखाँ ने दक्खिणी विहार के पर्वतीय आँचल को छुआ ही था कि मुस्लिम जगत् उसकी मौलिकता से चकित होगया था। अकबर की सेनाओं ने मानसिंह की नायकता में बंगाल के मार्ग से ही उड़ीसा में प्रवेश किया था। औरंगजेब की फौजें पलामू के पहाड़ी गोरख-धन्दे कोही पार न कर पातीं थीं।

उड़ीसा के मार्ग की मिट्टी भी विजयिनी सेनाओं के घोड़ों के सुमों से अनेक बार उखाड़ी जा चुकी है। उपर्युक्त दृष्टान्तों के अतिरिक्त हम राजपूत-काल में दाक्षिणात्य सेन राजाओं को इसी मार्ग से जाकर दक्षिण बंगाल का विजय करता पाते हैं। बिलकुल आधुनिक युग में क्लाइव और डुप्ले के दिनों में फिर इसी राजपथ से गुज़रने वाली सेनायें भारतवर्ष के भाग्य का निर्णय करती हैं।

[६] दक्षिण भारत

विन्ध्य-मेखला को लाँघकर अब हम दक्षिण भारत में प्रवेश करते हैं। दक्षिणी भारत एक पहाड़ी त्रिभुज है जिसका आधार विन्ध्य-शृङ्खला, दोनों भुजायें पूर्वी और पश्चिमी घाट, तथा शीर्ष बिन्दु कन्याकुमारी है। उत्तर भारत जिस तरह एक बड़ा मैदान है, दक्षिण भारत उसी तरह एक पथार है जिस की सामान्य ऊंचाई दो हज़ार फुट है। इसी पथार की गोद में भी कई नदियां कलोल करती हैं और अपने किनारों पर हरियावल बिछा जाती हैं। इन सब नदियों का प्रवाह पश्चिम से पूर्व को है जिसका यह अर्थ है कि दक्षिण भारतीय पथार का ढलान पश्चिम से पूर्व को है। पश्चिमी घाटों का पानी उनकी उत्तुङ्ग चोटियों से ढलकर अनेक छोटी छोटी धाराओं में बह जाता है, ये धारायें अपना अपना मार्ग पहाड़ी पथार में से काटकर मैदान में उतरतीं और एक दूसरे से मिलकर पूर्वी समुद्र में लीन होने से पहले बड़ी बड़ी नदियाँ बन जाती हैं। दक्षिण

भारत में फलत. जो कुछ मैदान है वह इन नदियों की घाटियों का, पथार के पूर्वी भाग में है।

गोदावरी और कृष्णा की घाटियों के सिवाय घाटों के किनारों पर भी समथर मैदान की दो पतली पट्टिया हे। पश्चिमी और पूर्वी दोनों घाटों के आँचलों पर मखमली हरियाली की किनारी है। पश्चिमी किनारी बहुत ही तग है, कहीं भी चालीस मील से अधिक चौडी नहीं, पूर्वी किनारी की चौडाई अस्सी और सौ मील तक है। दक्खिन के पथार के ये दोनों आचल भारतवर्ष के सबसे अधिक उपजाऊ भागों में गिने जाते हे। पश्चिमी आचल का उपरला भाग दमान से गोआ तक कोंकण कहलाता है, बीच में कर्णाटक तट है, और ठीक दक्षिण का भाग केरल (मलबार) है। पूर्वी आचल के निचले भाग को चोलमण्डल (कारोमण्डल) कहते हैं, बीच में आन्ध्र तट और ऊपर कलिङ्ग।

कोंकण के मैदान से सह्याद्रि (पश्चिमी घाट) की भीत एकदम सीधी ऊपर उठ खडी होती है। यह पहाडी भीत की परम्परा बुगलाना से नीलगिरि तक एक साथ अनिच्छिन्न, अव्यवहित रूप से चली गई है। इस "घाटमाथा" के पूर्व को पहाड धीरे धीरे ढलता हुआ मैदान में लीन होजाता है, जिसे महाराष्ट्र लोग "देश" कहते हैं। कोंकण, घाटमाथा और देश महाराष्ट्र के तीन विभाग हैं।

पश्चिमी घाट की परम्परा पीछे कोंकण की तरफ जैसी एक अविच्छिन्न भित्ति है, पूर्व की तरफ वैसी नहीं। इस तरफ वे धीरे धीरे खुल जाते हैं और उनकी गोद में नदिया अपनी घाटियां बिछाये हुए हैं।

दोनों घाटों की अब हम सविस्तार परिक्रमा करेंगे। सूरत से पूर्व की तरफ पश्चिमी घाट पहले पहल अपना सिर ऊंचा करते हैं। खानदेश के दक्षिण और सूरत–नवसारी बलसाड के पूर्व मे उनका जो उठाव दीखता है वह प्रसिद्ध बगलाना (प्राचीन वागुल देश) है जिसमें शिवाजी की पहाड़ी दुर्गमाला के सब से उत्तर के किले सल्हेर, मुल्हेर और रामसेज हुआ करते थे। बगलाना का कुछ भाग ३००० फुट से भी ऊपर उठ गया है। उसके पूर्व में चान्दोर पहाड़ियाँ दो हजार फुट से भी नीची हैं जो उसे उस प्रसिद्ध ढांग (ridge) से जोड़ती और अलग करती हैं जिसमें औरंगाबाद, दौलताबाद, एलूरा और अजन्ता हैं। अम्बई और जालना इसी ढांग के पूर्व में हैं। इस ढांग से पूर्व मे दो नीची पहाड़ी भुजायें बढ़ाई हैं, एक, पेनगंगा के उत्तर की अजन्ता-शृंखला जो बरार के अन्दर गवीलगढ शृंखला के समानान्तर चली गई है, और दूसरी, पैनगंगा के दक्षिण की निर्मल-शृंखला जो महाराष्ट्र के पूर्व में चान्दोर तक चली गई है।

गोदावरी से उत्तर के महाराष्ट्र की यही रचना है। बगलाना और औरंगाबाद की ढांगों के बीच में जहां जमीन नीची होती है, वहीं से खानदेश बम्बई जाने वाली रेलवे लाइन मनमाड के रास्ते गोदावरी-घाटी में आगई है, और बगलाना के नीचे भी गोदावरी के साथ साथ नासिक होती हुई वह घाट को पार कर गई है। बगलाना को पश्चिमी घाट की प्रधान शृंखला से गोदावरी जहां अलग करती है, वहां नासिक का पवित्र तीर्थ है।

गोदावरी के दक्षिण मे घाट की जो ढांग उठती है वह गोआ तक लगातार चली गई है। गोदावरी से भीमा तक

का भाग तीन हजार फुट से नीचा है, और इसी में थल घाट तथा आन्ध्रों और क्षत्रियों के शिलालेखों के कारण प्रसिद्ध नाना घाट है। इस टुकड़े से पूर्व-दक्षिण की ओर जो लम्बी ढाग की भुजा बढ़ी हुई है उसी पर अहमदनगर है। आगे चल कर इस ढाग की मुख्य रेखा मजीरा (गोदावरी की दक्षिणी शाखा) के दक्षिण में चली जाती है, किन्तु एक नीची परम्परा मजीरा और गोदावरी के बीच में चली गई है जिसे बालाघाट-शृंखला कहते हैं। इस परम्परा का आरम्भ भीर पर होता है जो कि असई और जालना के ठीक दक्षिण में है। अहमदनगर वाली मुख्य ढाग महाराष्ट्र के दक्षिणपूर्वी छोर तक चली गई है, और इसके पूर्व में जरा से व्यवधान के बाद गोलकुण्डा-हैदराबाद का पथार है जो तेलुगु-प्रांत में है। जिसकी स्थिति इन ढागों के बीच में, महाराष्ट्र और आन्ध्र की ठीक सीमा पर होने से बड़े महत्व की है।

भीमा के दक्षिण पूना से गोआ तक का पश्चिमी घाट का भाग ३००० फुट से लगातार ऊंचा है, और उसके ऊपरले खण्ड में जो कि भीमा और कृष्णा के बीच में है महाराष्ट्र का उच्चतम भाग महाबलेश्वर का पथार है जो ८०० फुट की ऊंचाई लांघ गया है। इसी प्रदेश में सुप्रसिद्ध भोर-घाट है। इसी खण्ड से पूर्व की तरफ घाट की एक ढांग बीजापुर के ठीक ऊपर तक चली गई है जिसके और मुख्य पश्चिमी घाट की रेखा के बीच में कृष्णा नदी आगई है। इस ढाग के उत्तरी तट पर फल्टन है, ठीक दक्षिण-पूर्वी छोर पर बीजापुर है, और दक्षिण पश्चिम में मीरज है। मीरज इस प्रकार बीजापुर की तरफ से महाराष्ट्र पर आक्रमण करने के लिए बीजापुर

वालों का पश्चिमी थाना था। मीराज के पश्चिम-दक्षिण में कृष्णा-घाटी में ही कोल्हापुर और पश्चिम में महाराष्ट्र इतिहास के सुप्रसिद्ध किले पन्हला और पवनगढ हैं, उत्तर में कृष्णा घाटी के ठीक आरम्भ में सतारा है। इसी घाटी से ऊपर महाबलेश्वर के जंगलों में शिवाजी ने अफजलखाँ की और हम्बीरराव मोहिते ने सरजाखाँ की सेनाओं को सबक दिया था।

गोआ पहुंचने से पहले घाट की ऊंचाई ढल जाती है, और रुख जरा पूर्व को हो जाता है। गोआ के नीचे कोंकण के मैदान को कुछ पूर्व की तरफ फैलने का अवसर मिला है। घाट का महाराष्ट्र भाग यहाँ समाप्त हुआ, और हिरण्यकेशी नदी के दक्षिण में वह दो हजार फुट से ऊंचे एक खुले पथार में, जो कर्णाटिक के उत्तर-पश्चिमी भाग को अंकित करता है, आ मिलता है। इसी पथार में बेलगाम, धारवाड, हुबली और गडग हैं। इस पथार के पूर्व में कृष्णा तुंगभद्रा की खुली घाटी है, जिसमें रायचूर, कोथल, विजयनगर, बल्लारि, अदोनी और कुर्नूल की समृद्ध और इतिहास-प्रसिद्ध बस्तियाँ हैं। पूर्व में इस घाटी को पूर्वी घाट की नल्लमले शृंखला पूर्वी समुद्रतट से मिलने से रोकती है, यद्यपि दक्षिणी छोर में गूटी के नीचे पनार नदी एक रास्ता खोल देती है। पूर्वी और पश्चिमी घाट के, एवं दक्षिण भारत के उत्तरार्ध और दक्षिणार्ध के ठीक बीच में होने से इस घाटी का विशेष महत्त्व है। चालुक्यों पल्लवों, राष्ट्रकूटों पल्लवों और चालुक्यों-चोलों के अनेक रौद्र युद्ध इसी घाटी में हुए हैं, इसी घाटी में पहले बाहमनी रियासत और फिर उसके टुकडों के शाह विजयनगर के सेनापतियों के साथ तलवारें

मापा करते थे, और अन्त में इसी घाटी में उस विशाल साम्राज्य के स्वामियों ने तालीकोटा की रक्तरञ्जित भूमि पर अपना मुकुट खोया था। वास्तव में कोथल की प्रदेश महाराष्ट्र से नीचे उतरने वाली शक्ति के लिए ठेठ दक्षिण का दरवाजा है, गोदावरी घाटी से भीमा-कृष्णा की घाटी में आने के लिए बिदर जैसा दरवाजा है, कृष्णा तुंगभद्रा से नीचे जाने के लिए कोथल वैसा ही दरवाजा है।

धारवाड हुबली के पथार को एक पतली पहाडी रीढ बेदनोर की ढाग से मिलाती है। यहां से शरवती नदी के नीचे से पश्चिमी घाट की उच्चतम शृङ्खला शुरू होती है जो पश्चिमी तट के साथ साथ नीलगिरि तक चली आती है। इस भाग में इस की ऊंचाई ४००० फुट से अधिक है, नीलगिरि की साधारण ऊंचाई ६५०० फुट है और उसकी उच्चतम चोटी पौने नौ हजार फुट तक पहुंचती है। यही वह शीर्षबिन्दु है जहां पश्चिमी और पूर्वी घाट की भुजायें आकर मिली हैं। पूर्वी घाट भी यहीं आकर समाप्त होता है। दोनों के नीचे पालघाट के दक्षिण में जो अनमले और एलामले पर्वत (Cardamom hills) मलियागिरि हैं ये तामिल प्रदेश के हैं और घाटों से स्पष्टत अलग हैं।

पश्चिमी और पूर्वी घाट जहां आकर मिले हैं दोनों के बीच में मैसूर वा कर्णाटक का पथार बन गया है। इस मध्य वर्त्ती पथार के उत्तरी तट पर चित्तलद्रुग, उसके नीचे वेदवती नदी और ठीक दक्षिण में कावेरी तट पर श्रीरंगपटम् और मैसूर हैं। पूर्व में पूर्वी घाट की जो ढांग है उस पर बंगलोर और कोलर हैं जहां की सोने की खानें आज अंग्रेजों के हाथ में हैं।

कावेरी नदी पूर्वी घाट की इस ढांग को फाड कर शिवसमुद्रम् की राह से प्रपातों के रूप में नीचे उतरती है, इन्हीं प्रपातों से आज विद्युत् निकालने की आयोजना की गई है। बंगलोर और कोलार की ढाग के पूर्व में वेलूर और आरकाट का तामिल मैदान है, उत्तरपूर्व में वह ढाग धीरे धीरे छोटी पहाडियों में ढल गई है जिनके अन्त में तामिल प्रान्त का पवित्रतम पर्वत तिरुपति है। उत्तर में पनार नदी के तट पर अनन्तपुर और कडपा* का जो मैदान है वह आन्ध्र है।

पूर्वी घाट की परम्परा वैसी अविच्छिन्न नहीं है जैसी पश्चिमी की। कावेरी नदी जहां नीलगिरि और पूर्वी घाट के बीच में से गुजरी है, वहाँ उसने कोई बड़ा रास्ता नहीं बनाया है, किन्तु ऊपर चलकर पनार ने अच्छा गहरा रास्ता नहीं बनाया। पनार और कृष्णा के बीच, कुर्नूल के पूर्व को, पूर्वी घाट का जो भाग है वह नल्लमलै-श्रृंखला कहलाता है। इसी में वह श्रीशैल पर्वत है जिसपर मल्लिकार्जुन रूप में महादेव प्रतिष्ठित है, और जिसकी पवित्रता हिमालय के केदारनाथ से कम नहीं है†। शिवाजी महाराज ने इसी के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर यहाँ अपना देह त्यागने की इच्छा प्रकट की थी। श्रीशैल

---

*अंग्रेजी में Cuddapah लिखा होता है। तेलुगु में ठीक कडप लिखते हैं, और संस्कृत शब्दों की तरह अन्तिम अकार को पूरा बोलते हैं।

† सौराष्ट्रे सोमनाथञ्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
केदारं हिमवत्पृष्ठे ...
। कुछ इस प्रकार का पौराणिक श्लोक है।

पर्वत के चरणों को जहा कृष्णा धोती है वहीं पाताल-गगा तीर्थ है।

नल्लमलै शृंखला कृष्णा को उत्तर की ओर मोड देती है। कृष्णा और गोदावरी जहाँ एक ही मैदान में आपहुँचती हैं वहीं आन्ध्र प्रदेश का सब से हरा भरा भाग है। गोदावरी की घाटी के साथ साथ ऊपर वेणगगा के सगम तक आन्ध्र मैदान जारी है। इस सगम से नागपुर तक, जो पश्चिमी घाट की सबसे उत्तर की अजन्ता शृंखला के पूर्वोत्तर और पूर्वी घाट के सब से उत्तरी भाग के पश्चिमोत्तर में है, खुला रास्ता गया है। वेणगगा के निकास के उत्तर में मडला और जबलपुर होकर विन्ध्यमेखला को लॉघने का रास्ता गया है जिसके पूर्व में मेकलपर्वत अमरकण्टक की चोटी से और पश्चिम में महादेव शृंखला पचमढी की चोटी से देखती है, और जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

गोदावरी के उत्तर पूर्व मे बस्तर और उडीसा का पहाडी भाग है। यह पूर्वी घाट का सबसे उत्तर का भाग है जिसे महानदी, ब्राह्मणी और सुवर्ण रेखा नदिया झाडखड और छोटा नागपुर से अलग करती हैं। इन्द्रावती इन अछूते जगली पहाडों के धोवन को पूर्व से पश्चिम में लेजाकर गोदावरी में डालती है। उसके दक्खिन में उसके समानान्तर शबरी नदी गई है, और दोनों के बीच का भाग बस्तर है। शबरी और समुद्र तट के बीच, ठेठ उडीसा में पूर्वी घाट का जो अश है वही महेन्द्रगिरि है।

पूर्वी घाट के इस उत्तरी अश और मेकल के बीच में छत्तीसगड-प्रदेश जो गोदावरी और महानदी का जलविभाजन

करने में घाट की सहायता करता है। मेकल, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा के पर्वतों के मिलने से जो जल विभाजक बना है वह नर्मदा, सोन, गोदावरी और महानदी के पानियों को अलग करता है।

साधारण दृष्टि से देखने से ही दक्षिण भारत के दो स्वाभाविक भाग अलग दीख पड़ते हैं—कृष्णा की घाटी से ऊपर का भाग एक, और कृष्णा से नीचे का ऊंचा पथार जिस में पूर्वी और पश्चिमी घाट आ मिले हैं, दूसरा। उपरले भाग के फिर तीन बड़े विभाग हो जाते हैं जिनमें से पहला महानदी की तराई या उड़ीसा गुजरात की तरह एकाकी प्रदेश है, यद्यपि दक्षिण से बंगाल जाने का यही स्थल मार्ग है। उड़ीसा के सिवाय, गोदावरी की तराई और पश्चिम का ऊंचा पहाड़ी भाग स्पष्टतः अलग अलग दीखते हैं। ध्यान रहे कि महाराष्ट्र, तेलंगाना और उड़ीसा के जाति-कृत विभागों से ये ठीक ठीक नहीं मिलते।

दक्षिणी भाग में कर्णाटक का पहाड़ी पथार और तामिल तट का मैदान, ये दो विभाग स्पष्ट हैं, यद्यपि कर्णाटक के हिन्दू साम्राज्य (विजयनगर) के अधीन रहने के कारण मुसलमान इस सारे प्रदेश को कर्णाटक कहने लगे, और फिर अठारहवीं सदी में अंग्रेजों फ्रांसीसियों की तामिल तट में जो लड़ाइयाँ हुईं वे भी कर्णाटक की लड़ाइयां कही जाने लगीं, और उसके अनुसार अंग्रेजी पेटलसों में तामिल तट को अब तक "कर्नाटिक" लिखा रहता है।

दक्षिण भारत के दोनों भागों के इतिहास-प्रवाहों में परस्पर उतना ही विच्छेद और वैसा ही सम्बन्ध रहा है जितना और

जैसा उत्तर भारतीय मैदान के दो बड़े भागों के इतिहास में। कृष्णा से उत्तर और कृष्णा से दक्षिण प्रदेश के इतिहास का प्रवाह साधारणतः दो धाराओं में बहता रहा है। यद्यपि इस कथन से हम भारतीय इतिहास की आधार भूत एकता का निषेध नहीं करना चाहते। मौर्य साम्राज्य में कर्णाटक का पथार भी सम्मिलित था, उसके बाद जो आन्ध्र साम्राज्य दक्षिण में चार सौ साल तक स्थापित रहा उसकी सीमायें प्रायः गोदावरी और कृष्णा होती थीं। आन्ध्र राज्य के लोप के बाद से चालुक्यों के पहले राज्य की स्थापना के समय तक गोदावरी कृष्णा-प्रदेश में कोई बड़ी राजनैतिक शक्ति न थी। तामिल देश में इसी समय प्राचीन चोल, पाण्ड्य [मदुरा और तिन्नेवली के जिले] और चेर (केरल) राज्यों का पराभव कर पल्लव राजा अपनी शक्ति स्थापित कर चुके थे। पल्लवों के बाद फिर चोलों के असीम उत्कर्ष की बारी आती है। उत्तरी दक्खिन में चालुक्यों के बाद राष्ट्रकूटों और फिर चालुक्यों का साम्राज्य स्थापित होता है। इस सारे समय में हम उत्तरी दक्खिन और दक्षिणी दक्खिन में दो पृथक् पृथक् राज्यों को एक दूसरे से तलवारें भिड़ाता पाते हैं। आरम्भ में चालुक्यों और पल्लवों में जिस प्रकार सम्पूर्ण दक्षिण को एक छत्र में लाने के लिए प्रतिस्पर्धा रहती है, आगे चलकर राष्ट्रकूटों और पल्लवों या चोलों में, और फिर चालुक्यों और चोलों में वही प्रतिस्पर्धा जारी रहती है। मुसलमानी जमाने में बाहमनी रियासत या उसके टुकड़ों और विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य की कभी न बन्द होने वाली कश-मकश उस प्रक्रिया को जारी रखती है। इस काल में स्वाभाविक राजनैतिक प्रतिस्पर्धा को साम्प्रदायिक भेद का भाव तेज़कर

देता है, राजपूत-काल में भी उत्तरी शक्ति के जैन और चोलों के शैव होने के कारण वह भाव विद्यमान था।

किन्तु इस साधारण भिन्नता के होते हुए भी दक्षिण के इतिहास में और समूचे भारतवर्ष के इतिहास में एक गहरा एकता है जिसकी प्रखर प्रभा में पहाड़ों और दुर्गम जंगलों की बाधायें पिघलकर लुप्त हो जाती हैं। भारतवर्ष के इतिहास में हम जितनी भिन्नता पाते हैं उससे कहीं अधिक एकता देखते हैं।

विन्सेन्ट स्मिथ और उन के साथियों का यह विश्वास कि दक्षिण भारत का इतिहास उत्तर के इतिहास से व्यावहारिक दृष्टि से बिलकुल पृथक है*, ठीक नहीं है।

विन्ध्यमेखला की रुकावट को इन सज्जनों ने उचित से कहीं अधिक महत्त्व देदिया है। जिस दिन विदर्भ (बरार) और मेकल में यादव राज्यों की स्थापना हुई थी†, उस दिन इस रुकावट का पराभव पूर्ण होचुका था, उसके बाद से इसका कुछ भी प्रभाव नहीं रहा। यदि प्राचीन अनुश्रुति अविश्वसनीय है, तो इतिहास के विद्यमान परिणाम भी इन सज्जनों के विश्वास की जड़ काट देने को काफी है। भारतीय सभ्यता [civilisation] और संस्कृति (culture) में जैसी एकसूत्रता, जैसा सामञ्जस्य है, आर्य और द्राविड सभ्यतायें मिल कर उसमें

* Oxford survey of the British Empire पृष्ठ २४२-८१।

† पार्जीटर-एन्शन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रडीशन, पृष्ठ १०२, २६६।

जिस प्रकार दूध पानी होगई हैं, यह अवस्था उस सातवीं शताब्दी विक्रमपूर्व के बाद के इतिहास में उत्पन्न नहीं हो सकती जिससे पहले काल को प्रागैतिहासिक कहने का दुःसाहस विन्सेन्ट स्मिथ ने किया है। ध्यान रहे कि दक्षिण भारत के इतिहास की लम्बी कशमकश का परिणामरूप उसका जो ऐतिहासिक विभाग आज हम पाते हैं वह प्राकृतिक सीमाओं का पूरा अनुसरण नहीं करता। उत्कल, आन्ध्र, महाराष्ट्र, कर्णाटक, केरल, और तामिलनाडु* का विभाग मोटे तौर पर प्राकृतिक विभागों से कुछ कुछ मिलता है, पर उनके साथ पूरी तरह ठीक नहीं बैठता। महाराष्ट्र और आन्ध्र की विभाजक रेखा किसी पहाड, नदी या मैदान का अनुसरण नहीं करती।

फलतः भौगोलिक स्थिति के कारण दक्षिण और उत्तर भारत की इतिहास धाराओं के अलग अलग बहने तथा दक्खिन के भी दो ऐतिहासिक खण्ड होने की कुछ कुछ प्रवृत्ति अवश्य रही है, पर वह प्रवृत्ति अनुल्लंघित कभी नहीं रही।

दक्खिन की भौगोलिक रचना में इसके सिवाय और कई बातें भी विवेचनीय हैं। उत्तर भारत की तरह दक्खिन में न बडी नदियाँ हैं न खुले मैदान। यदि कुछ मैदान और खुली उर्वरा भूमि है तो वह पूर्वी भाग में। दक्खिन के बडे बडे साम्राज्यों के केन्द्र स्वभावतः इसी पूर्वी भाग में रहे हैं। पश्चिम के सामुद्रिक व्यापार के केन्द्रभूत कोङ्कण के बन्दरगाहों से इन साम्राज्यों की गद्दियों को सह्याद्रि की दुर्गम अधित्यकायें अलग करती हैं। ये अधित्यकायें उत्तरी भाग में डांग,

* नाडु का शब्दार्थ प्रदेश है।

मध्य में मावल और कर्णाटक में मल्लाड कहलाती हैं। कोंकण और पूर्वी "देश" को मिलाने के लिए सह्याद्रि की दीवार में कई दर्रे हैं जो कुमाऊ और गढवाल के हिमालय के दर्रों की तरह घाट कहलाते हैं। नासिक के नीचे जिस दर्रे से रेलगाड़ी बम्बई गई है, वह एक बड़े महत्त्व पूर्ण चौराहे को काबू करता है। यही वह थलघाट है जिस के रास्ते सेनाओं का आना जाना हम शिवाजी और सम्भाजी के जमाने में लगातार देखते हैं। नाना घाट का नाम मुस्लिम काल में उतना नहीं सुनाई देता, पर प्राचीन आन्ध्र और क्षत्रप राजाओं के शिलालेख इसी में पाये जाते हैं। पूना के दक्षिण, महाबलेश्वर के ऊपर सुप्रसिद्ध भोरघाट है जिस की ऊंचाई दो हज़ार फुट से अधिक है। बेंगूर्ला और बेलगाम के बीच में फिर एक महत्त्व पूर्ण घाट है। इन और अन्य बड़े घाटों के सिवाय ऐसे असंख्य तंग घाट हैं जिनमें से छकड़े नहीं गुजर सकते।

कोंकण से देश जाने वाले रास्ते इन घाटों पर आसानी से काबू किये जा सकते हैं। इसी कारण सह्याद्रि के दुर्गम मावल का विशेष महत्त्व है। शिवाजी महाराज ने घाटों को काबू करने वाली सह्याद्रि की प्रत्येक चोटी पर किलाबन्दी करदी थी। पश्चिम की तरफ़ से सह्याद्रि की सीधी भीत के खड़े होने के कारण ये किले बिलकुल सुरक्षित होते थे, यदि इन पर आक्रमण हो सकता था तो पूर्व की ओर से। किन्तु मावलों के पेचीले पहाड़ी मार्गों में न तो खुले मैदानों में पले हुए बादशाही घोड़े मराठे टट्टुओं का पीछा कर सकते थे, और न बादशाही सैनिक गठीले मावलियों का युद्ध में सामने लड़ने का। मराठा सेना को कभी मतलब नहीं रहा; छापे मार कर वे पहाड़ी किलों में शरण ले सकते थे। सह्याद्रि और कोंकण एक क्रान्तिका

शक्ति के लिए बहुत बढ़िया आधार था। शिवाजी की अद्वितीय कर्तृत्वशक्ति और अदम्य साहस को सफल करने में सह्याद्रि और कोंकण की स्थिति बड़ी सहायक थी। महाराष्ट्र इतिहास के इस सुनहले पन्ने को पढ़ते समय महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति की सहायता को याद रखना आवश्यक है।

कोंकण के समान केरल भी पहाड़ों की ओट के कारण पूर्वी साम्राज्यों की आँखों से ओझल और पहुँच से बाहर रहा है। इन प्रदेशों के सामन्तों पर पूर्वी सम्राटों का प्रभुत्व नाम-मात्र को रहा है। जिस समय कालीकट के सामुरी† पुर्तगालियों को पैर जमाने के लिए जगह दे रहे थे, विजयनगर के सम्राटों को स्वप्न में भी ध्यान न था कि उनके आधीन देश में एक नई शक्ति की नींव पड़ रही है। केरल को पूर्वी मैदान से मिलाने के लिए एक बड़ा खुला रास्ता है जिसे पाल घाट कहते हैं। तामिल तट की सेनाओं के मलबार में जाने के लिए यही एकमात्र राजपथ रहा है।

शिवाजी की लीलाभूमि क्या आज भी किसी क्रान्तिपरायण शक्ति को शरण दे सकती है? निःसन्देह कोंकण की कोरों में अब कोई छिपने की जगह नहीं है, क्योंकि भारतवर्ष के आधुनिक प्रभु स्थलचर नहीं-जलचर जीव हैं और समुद्रतट के प्रदेश उनकी दोनों-कांटी होती हैं। इस कोंकण की ओट ही में तो शिवाजी और पुर्तगालियों की तरह अंग्रेजों को भी पहले

† पोर्चुगीज़ और अंग्रेज उन्हें Zamorin कहते हैं, और हमारी देसी भाषाओं के इतिहास लेखक आज मूंद कर उसी शब्द का प्रयोग किया करते हैं।

पहल शरण मिली थी। सह्याद्रि के मावल भी, जो घाटों में से गुजरने वाले रास्तों की नाकाबन्दी कर सकते थे आज रेलगाडियों से उसी तरह पददलित होते हैं जैसे गंगा और सिन्ध के विपुल जल प्रवाह। खानदेश से जो गाडी बम्बई तक आती है वह ऐसा नहीं करती कि ताप्ती के साथ साथ पहले सूरत तक आय और फिर दक्षिण को मुह मोडे, सीधे घाट की पहाडी गर्दन पर चढ़ जाती है। बम्बई और पूना के बीच में, मनमाड और अहमदनगर के बीच में, और अन्य अनेक स्थानों पर घाट की ऊँचाईयों को वह पैरों तले रौंदती है। "Roads and railways climb the steepest passes of Western Ghats which more than once tried the nerves of our soldiers in the old wars" "सडकें और रेलें आज पश्चिमी घाट के उन उच्चतम दर्रों पर चढ़ जाती हैं जिन्होंने अनेक बार पिछली लडाइयों में हमारे सैनिकों के छक्के छुडाये थे" (वि० स्मिथ, आक्सफर्ड-हिस्टरी, भूमिका, खण्ड १)। फलत आधुनिक विज्ञान के विजय के इन दिनों में सह्याद्रि की गुफायें शायद किसी क्रान्तिकारी शक्ति को शरण नहीं दे सकतीं। किन्तु विज्ञान के जादू को परखे विना आख मूदकर मान बैठना भी ठीक नहीं है। आधुनिक महाराष्ट्र ने कोई अच्छा क्रान्तिकारी सगठन नहीं पैदा किया, और न इस प्रकार का कोई बडा यत्न किया है जिससे हम इस सम्बन्ध में कोई परिणाम निश्चित कर सकें।

समष्टि रूप से दक्खिन की भारतवर्ष के इतिहास में क्या हैसियत है यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। दक्खिन में न बडी नदियां हैं, न खुले विस्तृत मैदान। उसका अधिकांश भाग पहाडी और ऊसर है। धरती की उपजमें और धन

समृद्धि में यह उत्तर भारत का मुकाबला नहीं कर सकता। इन बातों ने इतिहास में एक बड़ा महत्वपूर्ण परिणाम पैदा किया है। भारतवर्ष के इतिहास का गुरुता केन्द्र प्राय सदा उत्तर में रहा है। किन्तु इस का कारण केवल भौगोलिक स्थिति--दक्षिण भारत में बड़ी नदियों का न होना—ही नहीं है, प्रतिभाशाली आर्य जाति के आरम्भ में उत्तर से आने का इस अवस्था को पैदा करने में बड़ा प्रभाव रहा। इस पर भी डा० विन्सेन्ट स्मिथ का यह कथन कि कोई दक्षिणी शक्ति उत्तर भारत को काबू करने का कभी यत्न ही न कर सकती थी (No Southern power ever could attempt to master the North), सरासर गलत है। आन्ध्र राजा सीमुक या उसके किसी वंशज ने मौर्य राज्य को किन दशाओं में जीता था, उसका तो ठीक ठीक पता आज नहीं मिलता। किन्तु ग्यारहवीं विक्रम शताब्दी में, और ठीक उस समय जब महमूद गजनवी का लुटेरा दल उत्तरी भारत को तहसनहस कर रहा था, राजेन्द्र चोल की सेनाओं ने ठेठ तामिल देश से चलकर आर्यावर्त्त को जीतते हुए गंगा में अपने हाथियों को नहलाया था। बंगाल को जीतने वाले सेन राजा भी "दाक्षिणात्य-क्षोणीन्द्र" ‡ थे, और मारवाड़ के राठौड़ भी, विद्वद्वर प० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा के मत में, दक्खिण से आये हुए राष्ट्रकूट हैं। और प्राचीन इतिहास के ये सब दृष्टान्त यदि न भी होते तो दिल्ली के बादशाह को गुड़िया बना कर नचाने वाले मराठे सेनापतियों की विजय-यात्रायें क्या इस कथन को गलत सिद्ध करने को काफी नहीं हैं?

‡ देवपारा का शिलालेख। एपिग्राफिया इण्डिका, जिल्द १, पृ० ३०५ आदि।

खेती की उपज में दक्खिन, हिन्दुस्तान के मैदान का मुकाबला नहीं कर सकता, किन्तु खनिज सम्पत्ति में उत्तर भारत उसके मुकाबले में बिलकुल कगाल है। प्राचीन काल से मुगल ज़माने तक दक्षिण भारत अपनी हीरे की खानों के कारण ससार भर में प्रसिद्ध रहा है। आज भी आधुनिक व्यवसाय के लिए अपेक्षित सब प्रकार की खनिज सामग्री उसके पहाड़ों में मिलती है। अति प्राचीन काल से उसके मसाले पश्चिमी जगत् और उत्तर भारत के बाजारों को भरते रहे हैं। उसके सामुद्रिक व्यापार का इतिहास प्रागैतिहासिक काल से आरम्भ होता है। बेबिलन †, खाल्डिया और प्राचीन मिसर से यह व्यापार होने के प्रमाण मिले हैं। बिलोचिस्तान के तट पर ब्रहुई नाम की एक जाति है जिसकी भाषा को आधुनिक विवेचकों ने द्राविड परिवार का माना है। बहुत से पाश्चात्य लेखकों के मत में ब्रहुई जाति द्राविडों का व्यापक हरों से भारतवर्ष में प्रवेश करते समय पीछे रहा गिरोह है, किन्तु दक्खिन को द्राविडों का मूल स्थान मान कर ब्रहुइयों को उनके पश्चिमी व्यापार के मार्ग की एक बस्ती माना जा सकता है*। बेबिलन और खाल्डिया से पहले दजला-फरात के दोआब में सुमेर और आकाद नाम की जो जातियाँ थीं, उनके द्राविड होने का सन्देह भी कई पुराविदों ने किया है। कुछ ही हो, यह निश्चित है कि दक्षिण भारत के पास कुछ ऐसी

† संस्कृत-ग्रन्थों में बेबिलन का नाम बावेरु मिलता है, फारसी रूप है-बाबुल।

* स्वर्गीय वामन सोमनारायण दलाल ने अपनी हिस्टरी ऑव इन्डिया में कुछ ऐसा इशारा किया है।

वस्तुएं रही हैं जिनके कारण प्राचीनतम काल से पश्चिमी लोग उसके व्यापार पर लपकते रहे हैं। मलबार और तामिल नट में मिले रोमन सिक्कों के ढेर, और मलबार के दोगले मोपलों की नसों का अरबी खून इस बात के जीवित प्रमाण हैं।



[७] हिमालय और पश्चिमोत्तर की पर्वतमाला

मलबार के नारियल, केले और ताड के उद्यानों को छोड़ कर अब हमें हिमालय के सनातन हिमाच्छादित शिखरों और देवदार, चीड और सिरोई के पुलकित अधित्यकाओं तथा सुलेमान की सूखी चट्टानों की यात्रा करनी है। भारतवर्ष का कोई वर्णन हिमालय की चर्चा किये बिना कैसे पूरा हो सकता है? हिमालय हमारी जाति का जीवित, उत्तुङ्ग अभिमान, हमारे पूर्वजों का अमर स्मारक स्तूप, हमारे देवताओं की लीलाभूमि और हमारे तीर्थों की केन्द्रस्थली है। उसका यशोगान करके व्यास और कालिदास ने अपनी लेखनी को कृतार्थ किया है। उसकी चोटियों की गगन चुम्बी उच्चता, उसकी सनातन हिमरेखा की निष्कलङ्क पवित्रता, उसकी घाटियों की स्वर्गीय रमणीयता भारतवासियों के हृदयों में ऊंचे आदर्श जगाने की अमोघ शक्ति रखती है। हमारे पूर्वजों ने उसके शुभ्र शिखरों की छाया में, उसकी कलकलवाहिनी रुपहरी धाराओं† के सगमों में, उसके आमोदपूर्ण देवदार वनों की गम्भीर निर्जन

† गंगा की मुख्य धारा अलकनन्दा के साथ भागीरथी, मदाकिनी आदि छोटी धाराओं का जहां जहां संगम हुआ है

नीरवता में, उसकी दिव्य छटामयी घाटियों में, उसकी घोर गर्जना करती हिमानियों के और बादलों से खेलनेवाली कठोर कोरी चट्टानों के पड़ोस में चुन चुन कर तीर्थों और देवायतनों की स्थापना की है, जिनके दर्शन करने को हजारों धर्मपरायण यात्री प्रतिवर्ष अनेक कष्ट झेल कर आते हैं। हिमालय से जो नैतिक बल इस प्रकार आर्य संस्कृत के उपासकों को मिलता रहा है और सदा मिलता रहेगा, वह भी भारतवर्ष के इतिहास में एक गणनीय शक्ति है।

हमारी भौतिक समृद्धि और शस्य सम्पत्ति का तो वह एक मात्र आधार है। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण समुद्र से जो जल वाष्प उठकर उत्तर की यात्रा करने चलते हैं, उन्हें हिमालय की ऊंची चोटियाँ राह में रोक लेती हैं। वहां से या तो वे भारतवर्ष के मैदानों को सींचने लौट जाते हैं, या तुषार बनकर हिमालय की सनातन हिमरेखा के नीचे ग्रीष्म ऋतु तक डेरा डाल बैठ जाते हैं, और एक साल बाद नदियों की धाराओं के साथ फिर उसी समुद्र की शरण में पहुंच जाते हैं जहां से उठकर ऊपर गये थे। समुद्र और हिमालय की यह प्रतिवर्ष दोहराई जाने वाली सनातन विनोदक्रीडा हमारी बरसात और फलतः हमारी समूची ऋतुपद्धति का कारण है। इस ऋतु पद्धति पर हमारी सब शस्य सम्पत्ति, हमारा सामाजिक व्यवहार और हमारे जीवन का सिलसिला

जहां वहां एक प्रयाग है, जैसे रुद्रप्रयाग, देवप्रयाग, आदि। प्रयागों में स्नान करने का विशेष पुण्य है। प्रसिद्ध प्रयाग को प्रयागराज कहने का कारण यही है कि प्रयाग तो एक विशेष तरह के तीर्थ को कहते हैं, और वैसे तीर्थ बहुत से हैं।

निर्भर है। भारतवर्ष की नाना रूप भौगोलिक परिस्थिति के भिन्न भिन्न दृश्यों में यह समान ऋतुचर्या एक गहरी एकता का सूत्र पिरो देती है—ऐसी एकता जिसका मुकाबला दुनिया के किसी देश में नहीं मिलता, यदि कहीं मिलता है तो भारतीय मुनियों के "एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च" इस साक्षात्कार में।

भारतवर्ष के दक्षिणार्ध की परिक्रमा समुद्र की खाई ने की है, और उत्तरार्ध की पहाडी परकोटे ने। इस पहाडी परकोटे का मुख्य भाग हिमालय है, किन्तु पूर्व और पश्चिम में कुछ और पहाड उसके साथ मिल कर परिक्रमा को पूरा करते हैं। हिमालय का सीमानिर्देश करके हम इन पहाडों की स्थिति को ठीक समझ सकेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि उसकी दक्षिणी सीमा गंगा जमना और सिन्धु-सतलुज के मैदान हैं। उत्तर, पश्चिम और पूर्व की सीमायें ध्यान से निश्चित करनी होंगी, क्योंकि इन दिशाओं में दूर तक पहाडों की परिक्रमा चली गई है।

सतलुज की धारा के साथ साथ पहाडों को पार कर उसके स्रोत तक चले आइये, आप राजहंसों की विहारभूमि मानसरोवर में पहुंच जायेंगे। इसके जरा ऊपर देखिये, कैलाश पर्वत अपना अभ्रलिह शिखर उठाये खडा है। सतलुज के सिवाय सिन्ध और ब्रह्मपुत्र के स्रोत भी इन्हीं के पडोस में हैं। जमना और घाघरा की उत्पत्ति भी कुछ नीचे होती है, गंगा की छोटी शाखा भागीरथी का जन्म गंगोत्री में गोमुख से हुआ है किंतु उसकी मुख्य धारा अलकनन्दा भी इन्हीं पर्वतों में प्रकट होती है †। सिन्ध और सतलुज, ब्रह्मपुत्र और गंगा

† रायबहादुर पतिराम लिखित Goshwal देखिये। पुस्तक

यहा एक ही गोद से अलग अलग हो कर कितनी दूर दूर के मार्ग पकड लेती हैं! कौन जानता है कि इसी सिन्ध और ब्रह्मपुत्र में-आगे चल कर दो हजार मील का अन्तर हो जायगा ? इन नदियों के भिन्न भिन्न दिशायें पकडने का यह अर्थ है कि कैलाश पर्वत के निकट एक ऊंचा जल विभाजक है। यहाँ से लगा कर मैदान में कुरुक्षेत्र तक लगा तार एक जल विभाजक चला गया है।

सौर ! सिन्ध दक्षिण या उत्तर को नहीं बहता, क्योंकि दोनों तरफ ऊंचे पर्वत राह रोके खडे है, दक्षिण और उत्तर दोनों दिशाओं से ऊंचे पर्वतों से पानी टपक टपक कर छोटी छोटी धाराओं के रूप में उसमें आ मिलता है। यह दशा लगा तार नगा पर्वत के पर तक जारी है। इसका यह अर्थ है कि सिन्ध के दक्षिण उत्तर दोनों तरफ दो समानान्तर ऊंचा पर्वत श्रृंखलायें चली गई है जिनके बीच वह एक तंग रास्ता काटे हुए है—मानो दो ऊंची ढालू दीवारें, बरफ से ढकी हुई,एक दूसरे के बराबर खडी हैं, और दोनों के बीच एक सकडी नाली है जिसमें उनके ऊपर में से पिघल कर टपकने वाला पानी बह जाता है। सिन्ध के दक्षिण में जो पहाड़ी सिलसिला है वही हिमालय है, और उत्तर में मुस्ताग या कराकोरम है। ठीक इसी तरह की बात ब्रह्मपुत्र पूर्व की तरफ सूचित करता है। उसके दक्षिण में हिमालय और उत्तर में तिब्बत के पहाड है। यदि ये दोनों महानद अपने पहले मार्ग को पकडे रखते तो सिन्ध आमू और सीर की तरह तुर्किस्तान के मैदान में

इस समय हाथ में न होने से ठीक पृष्ठ का प्रतीक नहीं दिया जा सकता।

पहुंच जाँय और, ब्रह्मपुत्र चीन की सकड़ी घाटियों को सींचा करे। किंतु विधाता की योजना ऐसी नहीं है। नगा परवत के परे पहुंच कर सिंध अपने पश्चिमी मार्ग को रुका पाता है; उत्तर को रुकावट भी पहले की तरह जारी है। तिब्बत की नदियों की तरह यहां उसे पहाड़ों गोरखधन्दे में फंस कर अपना पानी किसी झील या दलदल में सड़ाना नहीं पड़ता क्योंकि दक्षिण की तरफ उसके लिए मार्ग खुला है। पर वह खुला कैसे है? क्योंकि हिमालय की शृंखला यहां नहीं रही, उसकी परिक्रमा में एक दिशा पूरी होगई है, अभी तक सिन्ध उसकी उत्तरी परिक्रमा कर रहा था, अब वह पश्चिमी परिक्रमा कर नीचे उतरता है, हिमालय अब उसके पूर्व में है, उसके पश्चिम का ऊंचा पर्वत हिन्दूकुश है। हिन्दूकुश का जलविभाजक न केवल सिन्ध को दक्षिण की तरफ मोड़ देता है, प्रत्युत चितराल, स्वात, काबुल, कुर्रम और गोमल का पानी भी उसी में भेज देता है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र हिमालय की पूर्वी परिक्रमा करता है, उसी की गहराई हिमालय को चीन के पहाड़ों से अलग करती है। ये दोनों महानद मिल कर हिमालय के शिवलिंग को तीन ओर से घेरे हुए हैं। दक्षिण को मुड़ जाने के बाद भी ब्रह्मपुत्र का रुख बरमा की तरफ बना हुआ है, आसाम की पहाड़ियां अपनी खसिया और गारो की भुजा, आगे बढ़ा कर उसे लगातार पश्चिम धकेले जाती हैं जब तक कि वह बंगाल की तरफ अपना मुंह नहीं मोड़ लेता। सिन्ध और ब्रह्मपुत्र की अतुल जलराशि इस प्रकार भारतवर्ष में पहुँचती है।

हिमालय की सीमायें अब स्पष्ट दीखने लगीं। सिन्ध के पार उसके समानान्तर जो ऊंची पर्वत माला है वह कराकोरम है। कराकोरम की उत्तरपश्चिमी जड़ से ही क्युनलुन शृंखला

फटी है, जिसके और हिमालय के बीच में तिब्बत का भारी पहाड़ी हिंडोला बँधा हुआ है। दोनों के पश्चिम में हिन्दूकुश है। हिन्दूकुश, कराकोरम और क्युनलुन मिल कर जहाँ गाँठ बाँधते हैं वहीं "बाम—ए—दुनिया" (दुनिया की छत) पामीर का पथार है। हिन्दूकुश की शृंखला पश्चिम में हेरात पर जाकर खतम होती है। हेरात की स्थिति का सामरिक महत्त्व इसी कारण है जिसे समझने का यत्न हम अभी करेंगे। हिन्दूकुश के दक्षिण में सफेद कोह है जिसे काबुल नदी उससे अलग करती है। सफेद कोह का जलविभाजक काबुल और कुर्रम के पानियों को मिलने से रोकता है, और कुर्रम और गोमल के बीच फिर वजीरिस्तान के पहाड़ हैं। हिन्दूकुश से यहाँ तक के पहाड़ों की पोटें मिलने से अफगानिस्तान का पथार बनता है जिसकी ऊँचाई उत्तर में तुर्किस्तान, पश्चिम में ईरान और दक्षिण-पश्चिम में सीस्तान के मैदानों के निकट जाकर ढलती है। गोमल नदी के नीचे सुलेमान शृंखला शुरू होती है, जिसके और बिलोचिस्तान के पहाड़ों के बीच, ठीक दर्रा बोलान के नीचे तक कच्छा गन्दाव के मैदान का पच्चर धँसा हुआ है। बिलोचिस्तान के पहाड़ों का प्राकार मकरान के तट पर आकर समुद्र की परिखा से आ मिला है।

पूर्व की तरफ बरमा के पहाड़ों की कई समानान्तर रेखायें भारतीय मैदान का पूर्वी परकोटा बनाती हैं। बरमा और चीन की बनावट बड़ी टूटी फूटी है। अनेक लम्बी लम्बी पर्वत शृंखलायें और उनके बीच बन्द नदियों की लम्बी सँकरी घाटियाँ, प्रत्येक घाटी पहाड़ी जंजीर के कारण दूसरी घाटी से अलग—यही परम्परा चली गई है। इस परम्परा के पश्चिमी छोर से खसिया और गारो पहाड़ियाँ बंगाल के मैदान में पच्चर की

तरह धसी हुई हैं, और पूर्वी बगाल से आसाम जाने का रास्ता रोके हुए हैं।

जिन लोगों ने कभी कोई पहाड न देखा हो उन्हें पहाड की रचना समझा देना बडा कठिन है। किस प्रकार पहाड़ों के बीच घाटियां घिर जाती हैं, और न केवल उन घाटियों को प्रत्युत पहाडों की पीठ को भी ठेठ तेरह हजार फुट की ऊंचाई तक किसान अपने हल से कुरेदता, खात का भोजन देता और खेती की हरियावल पहना देता है। और फिर अपनी गाढ़ी मेहनत से पैदा हुई फसल पेडों पर टाँग कर रखता है, किस प्रकार पहाडी रास्ते पर्वतों के नितम्बों पर चक्कर काट कर चोटी पर चढ़ते उतरते और सैकडों बार अपनी दिशा बदलते हैं। और किस प्रकार इन रास्तों के यात्री को झट झट नये नये दृश्य देखने को मिलते हैं, किस प्रकार तुषार सफेद फूलों की तरह बरसकर सेब और नासपाती को जीवन देता तथा हिमानियां चट्टानों के कठोर गर्भ को फोडकर दहाडा करती है* — ये सब बातें "देश" (मैदान) में रहने वालों को

* हिमानियों की यह रौद्रलीला हिमालय के ठीक अन्दर जाकर देखने को मिलती है। बरसात में जो पानी चट्टानों की कन्दराओं में पडकर बन्द हो जाता है, जमते समय उसे फैलने को जगह न मिले तो स्वभावत बडी बडी चट्टानों को फोड डालता है। जहाँ कोई हिमानी (= Glacier = गल) रहती है वहा लगातार यह प्रक्रिया जारी रहती है, और मीलों दूर तक भयकर आघोष सुनाई देता है जिसे पहाडी लोग भूतों की लीला समझते हैं। कुमाऊं में पिण्डारी का गल बहुत नज़दीक

कल्पना में कठिनता से उतरती है। हमने देखा है कि जिन पहाड़ी लोगों ने अपने पथरीले हिंडोले से बाहर कदम नहीं रक्खे हों उन्हें देशके खुले सपाट मैदानों की और उनके निर्बाध विस्तृत दिगन्त की कल्पना करा देना भी उतना ही कठिन होता है। किन्तु ये पहाड़ी लोग तो बड़ी संख्या में "देश" आया जाया करते हैं, देश के निवासी उतनी बड़ी संख्या में पहाड़ों की तीर्थ यात्रा करने नहीं जाते। तीर्थ यात्रा हमारे जातीय जीवन में एक बड़ी महत्व पूर्ण संस्था है जिसे नये रूप में राष्ट्रीय शिक्षा का एक आवश्यक अंग बना कर पुनर्जीवित करना चाहिए। इस समय तो हमारे जिन पाठकों ने हिमालय के दर्शन न किये हों उनके लिये सहानुभूति प्रकट कर हम नक्शे की सहायता से जहां तक बन पड़ेगा अपने लेख को स्पष्ट करने का यत्न करेंगे।

कराची या कलकत्ते के समुद्रतट से कालका या हरद्वार तक करीब सात आठ सौ मील की दूरी में भूमि की सतह केवल १००० फुट उठती है। इस हरे मैदान के उत्तर में जिस प्रकार जमना के मैदान के नीचे १००० से १५०० फुट तक की ऊंचाई है उसी प्रकार की ऊंचाई पीले रंग से सूचित हुई है, किन्तु जहां दक्खिण की तरफ यह पीला रंग काफी फैला हुआ है वहां हिमालय के नीचे इस की रेखा बड़ी पतली है। हरद्वार की स्थिति इसी पिलाई के अन्दर है। ध्यान से देखिए, मकरान के तट से अराकान के तट तक यह पीली किनारी लगातार पहाड़ों के नीचे नीचे चली गई है, कहीं भी टूटने नहीं पाई। किरथार शृंखला से सुलेमान के दामन तक पहुँचने के लिए इस किनारी को

है, और कुल्लु के ऊपर व्यासकुण्ड की हिमानी भी साधारण यात्री की पहुंच से दूर नहीं है।

कच्चा गन्दाव के मैदान का चक्कर लगाना पड़ता है, सुलेमान के साथ साथ यह लगातार चली जाकर गोमल पार करती है, यहां वजीरिस्तान के पहाड़ों से आगे बढ़ी पेज को भुजा जो डेरा इस्माइलखाँ को बन्नू जिले से अलग करती है इसे सिन्ध के करीब तक पीछे हटाती है, किन्तु यह भी उस का साथ नहीं छोड़ती। पेज से आगे बढ़कर टोची और कुर्रम के दोआब का ताना बाना इसी किनारी के तागों से बुना हुआ है, और काबुल के साथ साथ फिर इसने पहाड़ों के अन्दर प्रवेश किया है। कुर्रम और काबुल के बीच निःसन्देह सफेद कोह की दो भुजायें जो बन्नू को कोहाट से और उसे पेशावर जिले से अलग करती हैं, इसे फिर पूर्व को लौटाती हैं, किन्तु यह भी उनका घेरा डाले हुए है। काबुल और सिन्ध का संगम इसी के बीच होता है और सिन्ध और विहात के बीच फिर इसकी बुनावट फैल गई है, यहां इसे नमक की पहाड़ियों के सहारे जितना फैलना मिला है उतना और कहीं नहीं मिला। इन पहाड़ियों का चकर लगा यह फिर हिमालय के चरणों के साथ साथ चली गई है, कहीं जरा चौड़ी कहीं फिर तंग, किन्तु कहीं भी टूटने नहीं पाई। पेज और पेशावर को हम इसी पट्टी के अन्दर देख आये हैं, अब जम्मू, होशियारपुर, हरद्वार, कोटद्वार और काठगोदाम को भी इसी में पाते हैं। ठीक पूर्वी तट तक आप इस पट्टी के साथ साथ जा सकते हैं।

यह पीली रेखा हिमालय की तराई के बांगर* को सूचित करती है। यहां से जमीन जरा ऊपर उठने लगी है। अब एक

---

* सारे गंगा-जमना प्रदेश में मैदान की भूमि दो तरह की है, बागर या खादर। बागर का अर्थ ऊंची पक्की जमीन है,

क़दम आगे बढ़िये। १५०० से ३००० फुट तक की ऊंचाई को नक्शे में लाल रंग से दिखाया गया है। विन्ध्याचल और दक्षिण भारत की लगभग सारी रचना इसी रंग की है, किन्तु उत्तर पश्चिम के पहाड़ों और हिमालय में यह ऊंचाई भी एक संकीर्ण अनवरत रेखा के रूप में चली गई है, पश्चिमी से पूर्वी छोर तक आप इसके मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं।

नक्शे पर जो बात दिखाई देती है, उस पर ज़रा विचार कीजिए। समुद्रतट से हिमालय के चरणों तक करीब सात सौ आठ सौ मील की दूरी में भूमि की सतह केवल १००० फुट ऊंची हुई, इस पीली और लाल रेखा की चौड़ाई कुल मिलाकर कहीं चालीस कहीं पचास मील है, किन्तु इतनी दूरी में भूमि की सतह १००० से ३००० फुट तक उठ जाती है। इसका यह अर्थ है कि अब हम मैदान में नहीं हैं, पहाड़ी गोरखधन्दे में पहुँच गये हैं। हरद्वार से देहरादून तक केवल ४० मील का फ़ासला तय करने में ही हम १२०० फुट से २८०० फुट की ऊंचाई पर पहुंच जाते हैं। यह हिमालय की बाह्य शृंखला (Outer range) है। जम्मू से हरद्वार तक यह शिवालक कहाती है, रामगंगा के परली तरफ़, इसी के पहाड़ों को तराई के पहाड़ कहते हैं और बंगाल में दुआर। शिवालक में पहाड़ और मैदान का मेल है, दोनों के दृश्य इनमें दिखाई

और खादर का नदियों की मट्टी से बने पुलिन। डेल्टा में जाकर यह भेद नहीं रहता, क्योंकि वहां की सारी रचना नदियों की बनाई हुई है। दोनों शब्द ज़िला बिजनौर की बोली के हैं, और Oxford survey of British Empire के लेखकों ने इन्हें अंग्रेज़ी में भी अपना लिया है।

देते हैं, खेती अभी पहाड़ों पर नहीं होती, घाटियों में ही है, घने जंगल इन घाटियों को घेरे हुए हैं जिनमें मैदान और पहाड़ दोनों की वनस्पति और दोनों के प्राणी पाये जाते हैं। जीवजन्तु, वृक्ष-वनस्पति और दृश्यों की विविधता में संसार का कोई भाग शायद ही शिवालक से टक्कर खा सके। हिंस्र जन्तुओं और शिकार की जितनी अधिकता इनमें है उतनी ठेठ हिमालय में नहीं है। यह "चारु हिमाचल आँचल" पश्चिमी भाग में तो बहुत रमणीक है, किन्तु तराई और दुआर शायद वनस्पति की अधिकता से अस्वास्थ्यकर होगये हैं। प्राचीन इतिहास बतलाता है कि किसी समय यह पूर्वी भाग भी सभ्यता के बड़े बड़े केन्द्रों को स्थान दे सकता था, महात्मा बुद्ध के समय में कपिलवस्तु, कुशिनगर पावट आदि की समृद्ध बस्तियां इसी तराई में थीं जहां आज बांस के जंगलों में मस्त हाथी बड़े बड़े पेड़ों को उखाड़ते और गैंडे कीचड़ में खेला करते हैं। हिमालय के इस आँचल को कहीं दून और कहीं भावर भी कहते हैं। देहरादून के समान और कई नगरों की स्थिति इसी आँचल में है।

देहरादून से अब और उत्तर की ओर दृष्टिपात कीजिए। पहाड़ धीरे धीरे ऊपर नहीं उठते, एकदम एक ऊंची भीत की तरह उठ खड़े होते हैं। डालनवाला के बंगलों से रात के समय वह सामने जो मनसूरी की दीपमाला दिखाई देती है वहाँ तक पहुंचने के लिए भी आपको पाँच हजार फुट की ऊंचाई चढ़नी होगी। कोटा, भाटुल, श्रीनगर, शिमला, मनसूरी, नैनीताल, अलमोड़ा, काठमाण्डू, सब इसी ऊँचाई पर हैं। तीन से छः हजार तक की और फिर छः से बारह हजार फुट तक की ऊंचाई नक्शे में मटियाले और हलके-काले रंग से अंकित हुई

है। यही वास्तव में हिमालय का वह भाग है जिसमें पहाड़ी बस्तियां हैं। नीचे की बस्तियां तराई की हैं, और तेरह हज़ार फ़ुट से ऊपर बस्ती है ही नहीं। यह हिमालय की मध्य शृंखला, (Inner Range) है।

पश्चिम से पूर्व तक एक बार इस शृंखला का हमें सावधानी से निरीक्षण करना होगा। क्वेटा पर पहुंच कर मटियाली रेखा वाले रंग के आरपार निकल गई है, यही दर्रा बोलान है। इस दर्रे के पार बिलोचिस्तान की बनावट देखिए। कोई कोई चोटी ६००० फुट की ऊंचाई लांघ गई है, पर सारा प्रदेश साधारण रूप से चार-पांच हज़ार की ऊंचाई का पथार है जिसके बीच का भाग तीन हज़ार फुट से भी नीचा है।

दर्रा बोलान के उत्तर में हलकी काली ऊंचाई एक पतली रेखा नहीं रही, एक विस्तृत प्रदेश में फैल गई है, जिसके पश्चिम में हेरात, दक्षिण-पश्चिम में कन्धार और पूर्व में काबुल ४-५ हज़ार फुट की ऊंचाई पर हैं, तीनों के बीच जो सात आठ हज़ार फुट ऊंचाई का पहाड़ी हिंडोला है वही अफगानिस्तान का पथार है। इस पथार के उत्तरी छोर में हिन्दूकुश की ऊंची चोटियों की रेखा पश्चिम-दक्षिण से पूर्वोत्तर को चली गई है, जो बारह हज़ार फुट से भी ऊंची होने के कारण गहरे काले रंग से अंकित की गई है। किन्तु ध्यान रखिये यह चोटियों की शृंखला बिलकुल अविच्छिन्न नहीं है, दक्षिण में काबुल और उत्तर में आमू नदी इनके चरणों तक चार-पांच हज़ार फ़ुट ऊंची ज़मीन में अपना रास्ता काटे हुए हैं।

हिन्दूकुश की शृंखला चितराल के पास पहुंच कर केवल एक जगह अठारह हज़ार फुट की ऊंचाई लांघ गई है। ऊपर

यह शृंखला पामीर के पठार में समाप्त हुई है जिसके ऊँचे हिस्से की औसत ऊँचाई १३ हजार फुट है। इनके उत्तर-पश्चिम में फिर क्रमश ढलान है और मुर्गाब, आमू और सीर की घाटियों में छः सौ फुट ऊँचा हरा मैदान दिखाई देता है। यही तुर्किस्तान है।

अफगानिस्तान और तुर्किस्तान की कहानी का भारतवर्ष के इतिहास से बड़ा सम्बन्ध है। ये पश्चिम के पहाड़ हमारा इन देशों के साथ सम्बन्ध तोड़ नहीं देते। मेहनती व्यापारियों और लुटेरी सेनाओं के लिए इन काली दीवारों में से गुज़रने के लिए अनेक छेद हैं।

अफगानिस्तान की परिक्रमा हो चुकी, इसके अन्दर की स्थिति भी अब देखनी चाहिए। कन्धार और काबुल के बीच अरगन्दाब और काबुल नदी की दक्षिणी धारा अफगानिस्तान के बगीचों से घिरे मुख्य राजपथ की दिशा को सूचित करती है। काबुल से कन्धार तक मुँह कर के खड़े हों तो दाहिने हाथ को हेरात तक फैली हिन्दूकुश की विकट शृंखला और बायें को कुर्रम की घाटी की ओट में लिए सफेद कोहकी एकाकी रेखा दिखाई देगी। इसी मार्ग पर सफेद कोह के पश्चिम में सुप्रसिद्ध गज़नी है। गजनी से नीचे की तरफ बज़ीरिस्तान का घेरा कर के गोमल नदी के साथ साथ उतर कर अन्त में दर्रा गोमल से डेरा इस्माइलखा के मैदान में पहुँचने को एक रास्ता है। गोमल द्वार के ठीक नीचे डेरा इस्माइलखां के पास सिक्खों का किला था किन्तु आजकल ब्रिटिश सरकार की थाना और पश्चिम में वज़ीरिस्तान के पहाड़ों में वानर एर है। गज़नी से गोमल न जाकर यदि सीधा पूर्व में कुर्रम की घाटी

में उतरना चाहें तो शुतरगर्दान का दर्रा पहाड़ में से रास्ता देता है। घड़ाचिनार के थाने से ब्रिटिशराज इस रास्ते पर नजर रखता है।

सफ़ेद कोह के ऊपर काबुल नदी अफ़गानिस्तान से भारतवर्ष तक जाने का सीधा खुला रास्ता सूचित करती है। सिकन्दर की फौज का मुख्य भाग हिन्फैस्टियन और पर्डिक्कस की आधीनता में भले ही काबुल नदी के साथ साथ उतरा हो, आजकल का राजपथ नदी का साथ छोड़ खैबर दर्रे में होकर जमरूद जा निकलता है। विलोचिस्तान का दर्रा बोलान नक्शे में इन सब दर्रों से अधिक खुला दिखाई देता है, किन्तु उसके दोनों तरफ निरा रेगिस्तान है। उसका प्रयोग भी अर्वाचीन काल से होने लगा है। सिकन्दर ने क्रेटरस की अध्यक्षता में जो फौज इस इलाके में से भेजी थी, वह कलात के पास दर्रा मूला में से गई थी। फिर भी रसद और पानी न मिलने से उसकी बुरी गत बनी थी। हुमायूं जरूर दर्रा बोलान होकर कन्धार भागा था। पर उस समय उसके साथ केवल चालीस साथी थे। शाहजहाँ के जमाने में जो भारतीय सेनायें ईरानियों से कन्धार लेने के लिए जाती थीं, वे दर्रा बोलान से नहीं प्रत्युत काबुल के रास्ते जाती थीं।

काबुल नदी की उत्तरी शाखा हिन्दूकुश के चरणों तक उत्तर को रास्ता बनाती है, इसके अन्तिम छोर पर चरीकर का नाका है। जिसकी आमू की घाटी से दूरी बहुत अधिक नहीं है। बलख (दक्षिणी तुर्किस्तान) और काबुल के बीच के मार्ग को काबू करने का कारण चरीकर की स्थिति बड़े सांग्रामिक महत्व की है। हेरात के क़रीब से बैक्ट्रिया (बलख) की तरफ जाकर वहाँ अफ़गानिस्तान लौटने का सिकन्दर का यही मार्ग था।

और पूर्व में हिन्दूकुश की उच्चतम चोटी के निकट तुर्किस्तान से चितराल नदी की घाटी में उतरने के लिए दूरा का दर्रा दिखाई देता है। रूसी भालू के इस मार्ग पर आख रखने के लिये चितराल में एक बडी ब्रिटिश सेना तैयार रहती है। चितराल की घाटी से दरगई, मर्दान और नौशहरा के मैदान तक पहुचने के लिये दीर, स्वात और बाजौड के जगली इलाके में से गुजरना पडता है, और अन्त में दर्रा मलाकन्द मैदान का अन्तिम द्वार खोलता है। किन्तु बडी बडी तोपों का भार लादे हुए किसी आधुनिक स्थल सेना का दूरा के तग दर्रे से आना लग भग असम्भव है। रूसी भालू को भारतवर्ष पहुँचने का यदि कोई मार्ग था, और आज बोलशेविकों की लाल सेना कोभी यदि कोई है तो वह हैरात के रास्ते अफगानिस्तान में से गुजर कर ही है। रूसी और ब्रिटिश साम्राज्य के बीच इस प्रकार की मध्यस्थता की स्थिति के कारण ही पिछली शताब्दी से अफगानिस्तान का नाना अन्तर्राष्ट्रीय (Internationl) राजनीति में बडा महत्व हो गया है।

धीर पठानों के देश को छोड अब हम सिन्ध की घाटी में प्रवेश करेंगे। हिंदूकुश, हिमालय और कराकोरम के बीचों-बीच सिन्ध नदी अपना रास्ता बनाये हुए है। नगा पर्वत के परली ओर पश्चिम की तरफ से जो धारा उसमें अपना पानी मिलाती है वह गिलगित की घाटी को सूचित करती है। और पूर्व में जहां श्योक नदी कराकोरम का पानी लिए सिन्ध से भेंट करती है उस सगम के पश्चिम में-नदी के तट पर स्कर्दू है। और आगे पूर्व में सिन्ध की घाटी में ही लेह और लद्दारल की बस्तिया हैं।

काश्मीर (श्रीनगर) जम्मू, चम्बा और कांगडा की घाटियों से, जिनका हम दर्शन करेंगे, हिमालय पार की इन बस्तियों तक जाने वाले यात्री सिन्ध के साथ साथ ही नहीं जाते उनके लिए हिमालय के बीच में से गुजरने के लिए अनेक दर्रे हैं जिन सबका उल्लेख करना यहां अनावश्यक है।

हम देख चुके हैं कि बाह्य श्रृंखला के लाल रंग के ऊपर मटियाला और हलका काला रंग हिमालय की मध्य श्रृंखला के उठाव को सूचित करता है। इनके ऊपर जो गहरा काला रंग है वह मैदान से सौ एक मील की दूरी पर है और हिमालय की बारह हजार फुट से अधिक ऊंची उस गर्भ श्रृंखला (inermost range) को सूचित करता है जिसमें मनुष्य खेती नहीं करता और जो असल हिमालय है। इस गर्भ श्रृंखला के मस्तक पर सनातन हिमरेखा का शुभ्र मुकट विराजमान है।

मध्य श्रृंखला के बाद गर्भ श्रृंखला के पर्वत धीरे धीरे नहीं उठते। वे एकाएक अत्यन्त आकाश में लीन होने के लिए ऊपर उठे प्रतीत होते हैं। उनकी नंगी काली उघडी भीतें अत्यन्त रौद्र मालूम होती हैं। मध्य श्रृंखला के आरम्भ (६०००-८००० फुट की ऊंचाई) में मनुष्यों की बस्तियों और पशुपक्षियों की चहल-पहल है, वनस्पति की घनी हरियावल है। ऊपर चल कर बस्तियाँ विरल और चहल-पहल कम होती जाती हैं। लद्दाख, लेह (काश्मीर के उत्तर की हिमालय के परली तरफ), बशहर (भारतवर्ष के अन्तिम उत्तरी तट पर सतलुज के पूर्वी किनारे तिब्बत से छूती एक रियासत), और भोट (गढ़वाल-कुमाऊं का उत्तरी भाग) मध्यश्रृंखला की

अन्तिम विरल-बस्तियों के नमूने हैं जो १० हजार से १२ हजार फुट की ऊंचाई पर हैं। अमरनाथ (काश्मीर में), बदरीनाथ और मुक्तिनाथ (नेपाल में) के तीर्थ इसी शृंखला में हैं। इनके आगे मनुष्यों के गाँव नहीं हैं, बैल हल नहीं खींचते, और खच्चर भी पैर रखने के डरसे जवाब दे देते हैं। बदरिकाश्रम तेरह हजार फुट की ऊंचाई पर है, उसके ठीक ऊपर बदरीनाथ की जो हिमाच्छन्न चोटियां आकाश को बाँधती दिखाई देती हैं वे अठारह हजार फुट की ऊँचाई लांघ गई हैं। गर्भशृंखला की रचना सर्वत्र इसी प्रकार की है। इसके ऊपर जो हिम रेखा है वह सनातन हिम है। निचले पहाड़ों पर तुषार पड़ता है और आधे बरस पिघल जाता है, किन्तु यह वह सनातन हिम है जिसके जमने-पिघलने का काल मानव इतिहास के गिने से नहीं मापा जाता। गढ़वाल और कुमाऊ के यात्री की राह में अनेक ऐसे पड़ाव पड़ते हैं जहा किसी पर्वत की ओट इन चोटियों को आखों से ओझल नहीं करती, किसी किसी स्थान पर तो धोलगिर से सतलुज पार तक की चोटियां सब की सब एक क्रम में दिखाई देती हैं, जहा सूर्योदय के समय प्रकृतदेवी के इस अछूते स्वर्णभंडार की स्वर्गिक छटा देख कर जीवन सफल किया जा सकता है†। किन्तु इन चोटियों में से प्रत्येक को आप किसी स्थान से अब

† अलमोड़ा के पास सिरतोला या कालीमाट की चोटियों पर से और मनसूरी में लठोर की गोरी बारकों के ऊपर से यह दृश्य देखा जासकता है जो साधारण पाठकों के लिए भी सुलभ है। कागडी गुरुकुल से अच्छी ऋतु में चन्द्रपुष्ठ और संग रॉय की चोटियां दिखाई देती हैं।

काश्मीर (श्रीनगर) जम्मू, चम्बा और कांगड़ा की घाटियों से, जिनका हम दर्शन करेंगे, हिमालय पार की इन बस्तियों तक जाने वाले यात्री सिन्ध के साथ साथ ही नहीं जाते उनके लिए हिमालय के बीच में से गुजरने के लिए अनेक दर्रे हैं जिन सबका उल्लेख करना यहां अनावश्यक है।

हम देख चुके हैं कि बाह्य शृंखला के लाल रंग के ऊपर मटियाला और हलका काला रंग हिमालय की मध्य शृंखला के उठाव को सूचित करता है। इनके ऊपर जो गहरा काला रंग है वह मैदान से सौ एक मील की दूरी पर है और हिमालय की बारह हजार फुट से अधिक ऊंची उस गर्भ शृंखला (innermost range) को सूचित करता है जिसमें मनुष्य खेती नहीं करता और जो असल हिमालय है। इस गर्भ शृंखला के मस्तक पर सनातन हिमरेखा का शुभ मुकट विराजमान है।

मध्य शृंखला के बाद गर्भ शृंखला के पर्वत धीरे धीरे नहीं उठते। वे एकाएक अत्यन्त आकाश में लीन होने के लिए ऊपर उठे प्रतीत होते हैं। उनकी नंगी काली उघड़ी भीतें अत्यन्त रौद्र मालूम होती हैं। मध्य शृंखला के आरम्भ (६०००-८००० फुट की ऊंचाई) में मनुष्यों की बस्तियों और पशुपक्षियों की चहल-पहल है, वनस्पति की घनी हरियावल है। ऊपर चल कर बस्तियाँ विरल और चहल-पहल कम होती जाती हैं। लद्दाख, लेह (काश्मीर के उत्तर को हिमालय के परली तरफ), बशहर (भारतवर्ष के अन्तिम उत्तरी तट पर सतलुज के पूर्वी किनारे तिब्बत से छूती एक रियासत), और भोट (गढ़वाल-कुमाऊ का उत्तरी भाग) मध्यशृंखला की

अन्तिम विरल-बस्तियों के नमूने हैं जो १० हजार से १३ हज़ार फुट की ऊंचाई पर हैं। अमर्नाथ (काश्मीर में), बदरीनाथ और मुक्तिनाथ (नेपाल में) के तीर्थ इसी शृंखला में हैं। इनके आगे मनुष्यों के गाँव नहीं हैं, बैल हल नहीं खींचते, और खच्चर भी पैर रपटने के डरसे जवाब दे देते हैं। बदरिकाश्रम तेरह हजार फुट की ऊंचाई पर है, उसके ठीक ऊपर बदरीनाथ की जो हिमाच्छन्न चोटियां आकाश को बींधती दिखाई देती हैं वे अठारह हजार फुट की ऊँचाई लांघ गई हैं। गर्भशृंखला की रचना सर्वत्र इसी प्रकार की है। इसके ऊपर जो हिम रेखा है वह सनातन हिम है। निचले पहाड़ों पर तुषार पड़ता है और आये बरस पिघल जाता है, किन्तु यह यह सनातन हिम है जिसके जमने पिघलने का काल मानव इतिहास के निखे से नहीं मापा जाता। गढ़वाल और कुमाऊं के यात्री की राह में अनेक ऐसे पड़ाव पड़ते हैं जहां किसी पर्वत की ओट इन चोटियों को आंखों से ओझल नहीं करती, किसी किसी स्थान पर तो धौलगिर से सतलुज पार तक की चोटियां सब की सब एक क्रम में दिखाई देती हैं, जहां सूर्योदय के समय प्रकृतदेवी के इस अछूते स्वर्णभंडार की स्वर्गिक छटा देख कर जीवन सफल किया जा सकता है‡। किन्तु इन चोटियों में से प्रत्येक को आप किसी स्थान से जब

‡ अलमोड़ा के पास बिनसर या कालीमाट की चोटियों पर से और मनसूरी में लंढौर की गोरी बारकों के ऊपर से यह दृश्य देखा जासकता है जो साधारण पाठकों के लिए भी सुलभ है। कांगड़ी गुरुकुल से अच्छी ऋतु में बन्दरपूंछ और स्वर्गरोहिणी की चोटियाँ दिखाई देती हैं।

तीय पाठकों को प्रतीत होने लगती है। चीन के सम्राट तिब्बत, काश्मीर और नेपाल की राजनीति में लगातार हस्तक्षेप करते रहे हैं। ईसा की सातवीं शताब्दी के अन्त में अरब के रेगिस्तान से उठी आंधी जब मध्य एशिया में चीनी साम्राज्य की चट्टानों से टकराकर लौट गई थी तभी उसने सिंध और स्पेन का मार्ग पकड़ा था। चीनी साम्राज्य उस समय अपने पूरे यौवन पर था, और एक शताब्दी तक काश्मीर, उद्यान (बदख्शां) और कपिशा (काबुल) आदि के सामन्त राज्यों को आर्थिक और सैनिक सहायता देकर उसने अरब प्रवाह से आर्य सभ्यता को बचाये रखने के बाँध बनाये रक्खे। इसी जमाने में मुस्लिम लोगों ने मूर्तिको बुत (=बुद्ध=बुद्ध भगवान् की प्रतिमा) कहना सीखा था। नेपाल में चीन का दख़ल गोरखा शक्ति की स्थापना (अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध) के बाद तक बना रहा है। अभी लार्ड कर्जन के समय में ही ब्रिटिश सेना चुम्बी घाटी के रास्ते लासा पहुंची थी, ठीक उसी समय चीन से भी तिब्बत को सेना भेज दी गई थी। चीनी सरकार यदि इस समय यह जागरूकता और योग्यता न दिखाती, और तिब्बत में से अपनी सेनायें लौटाना सर फ्रांसिस यगहस्बैण्ड को वैसाही बेरोकटोक काम प्रतीत होता जैसा मराठा साम्राज्य में से वारन हेस्टिंग्स के समय कर्नल गाडर्ड को हुआ था, तो, तिब्बत आज अंग्रेजों की दाँतों-काटी रोटी होती। तिब्बत के साथ और विशेष कर हिमालय पार नेपाल काश्मीर आदि के साथ चीन का इतना निकट सम्बन्ध सूचित करता है कि हिमालय की रुकावट किस हद तक लांघी जा सकती है।

भारतवर्ष की पूर्वी सीमा पर बरमा स्याम और भारतवर्ष के बीच कोई बड़ी रुकावट नहीं है। चीन का दक्षिणपश्चिमी

प्रान्त युन्-नान् इस तरफ भारतीय सीमा के बहुत निकट है, तिब्बत की चढ़ाई चढ़े बिना ही बरमा के रास्ते इस के द्वारा दोनों महादेशों में परस्पर सम्बन्ध बना रहता है।

प्रचलित पाठ्यपुस्तकों में भारतवर्ष के इतिहास को वायव्य सीमाप्रान्त से होने वाले आक्रमणों की कहानियों की एक परम्परा बना दिया गया है। समझा यह जाता है कि यह भारतीय-सीमा की भौगोलिक रचना का स्वभाविक परिणाम है। किन्तु भौगोलिक स्थितिको ही देखें तो उत्तर पूर्वी सीमा से भारतवर्ष में प्रवेश करना उतना ही सुगम है जितना उत्तर-पश्चिमी से। दूसरे, यदि उत्तर-पश्चिमी मार्ग भारतवर्ष में प्रवेश करने का मुख्य मार्ग हो भी तो, मानव इतिहास भौगोलिक स्थिति का बिलकुल गुलाम नहीं है, मनुष्य का कर्तृत्व सैकड़ों बार प्राकृतिक कठिनाइयों का उपहास करता है। भारतवर्ष का इतिहास उत्तर-पश्चिम के आक्रमणों की एक लम्बी कहानी है, यह विचार ऐतिहासिक सचाइयों पर उतना आश्रित नहीं है जितना सस्ती व्याप्तियां है (generalisations) और सरल सूत्र ढूढ़ने वाले ऐतिहासिकों की कल्पना पर। बिलोचिस्तान में ब्रहुई नाम की एक भाषा पाई जाती है जिस की बनावट कहते हैं कि द्राविड है, इससे एकदम यह कल्पना करली जाती है कि द्राविड लोग दर्रा मूला या दर्रा बोलान के रास्ते भारतवर्ष आये थे और ब्रहुई उनकी रास्ते में रही हुई शाखा है। किन्तु यह कल्पना उससे कहीं अधिक सगत प्रतीत होती है कि द्राविडों का असल घर दक्षिण भारत में था, और ब्रहुई बोली उनके पश्चिमी व्यापार के मार्ग में एक उपनिवेश को सूचित करती है। कहा जाता है कि वायव्य दिशा से सब से बड़ा आक्रमण आर्यों का हुआ। ऋग्वेद में कुभा (काबुल), क्रमु (कुर्रम), गोमती (गोमल),

और सुवास्तु (स्वात) नदियों का उल्लेख अवश्य है, किन्तु यह कल्पना बिलकुल निराधार है कि वैदिक काल में आर्य लोग पंजाब तक ही परिमित थे, और पंजाब में वे वायव्य कोण से उतरे थे। भारतीय अनुश्रुति की तीस बरस तक ईमानदारी से खोज करने के बाद पार्जीटर महोदय बिलकुल उलटे परिणामों पर पहुंचे हैं†—अर्थात् भारतवर्ष में आर्यों के राज्य पहले पहल अयोध्याविदेह※ और प्रतिष्ठान (प्रयाग) में थे, प्रयाग में उन का आगमन इलावृत या मध्यहिमालय (कूर्माचल, गढवाल) प्रदेश से हुआ, यह भी सम्भव है कि वे हिमालय पार तिब्बत से आये हों, और कि आर्यों का विजय प्रवाह फारिस से भारत की तरफ़ से नहीं प्रत्युत भारत से फारिस की तरफ बहता रहा।

अनुश्रुतिगम्य इतिहास को छोड कर अगले युग में आइए। यहां भी भगवान् बुद्ध के बाद के इतिहास में भारतवर्ष पर होने वाले हमलों को जहां खूब बढा कर दिखाया जाता है वहाँ भारतवर्ष के सांग्रामिक और सभ्यता-संस्कृति-सम्बन्धी दिग्विजय को भुला दिया जाता है। मौर्य, गुप्त, बैस और पालवंश के राजाओं के समय आर्य संस्कृति का सम्पूर्ण एशिया में जो प्रचार हुआ, उसका वृत्तान्त विश्व के इतिहास

† एन्शन्ट इन्डियन हिस्टौरिकल ट्रैडीशन पृ० २८७ ३०२।

※ मानव वंश को द्राविड मानने में हम पार्जीटर महोदय से सहमत नहीं हो सकते। हमारा विचार है कि यह भी आर्यों की एक शाखा है जो ऐलों से पहले इतिहास में प्रकट होती है। इसी आधार पर हमने अयोध्या और विदेह के राजा को आर्य कहा है।

में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। खोतन (पूर्वी तुर्किस्तान) की परम्परागत कहानी के अनुसार उस देश के निवासियों को न केवल धर्म प्रत्युत राज्य पद्धति का ज्ञान सबसे पहले अशोक मौर्य के यहा से प्राप्त हुआ था †। तुर्किस्तान के अनेक दबे हुए स्तूपों के नीचे से संस्कृत प्राकृत के ग्रन्थ कर्नल बावर के समय से मिल रहे हैं, और डा० स्टाइन वहाँ से जो लकड़ी पर खुदे अभिलेख (inscriptions) लाये थे, वे दो साल हुए पढ़े जा चुके हैं *। ये बातें सूचित करती हैं कि मध्य एशिया मुस्लिम प्रभाव में आने से पहले सभ्यता में बहुत कुछ आर्य हो चुका था। तिब्बत, चीन, जापान, स्याम आदि में करोड़ों की आबादी अब तक बौद्ध है। इन करोड़ों विदेशियों का आर्य धर्म को अपना लेना कुछ दिनों या कुछ बरसों की घटना न थी। इसके लिए शताब्दियों तक भारतवर्ष से इन देशों की तरफ प्रवाह जारी रहा था। ज़रा इन घटनाओं पर विचार कीजिए। काश्मीर से यारकन्द-खोतन जाने के मार्ग हिमालय और कराकोरम दोनों की शृंखला पार करनी पड़ती है, एक बार आने जाने में एक साल से कम समय नहीं लगता, रास्ते में पड़ाव नहीं हैं, अपना डेरा-डंडा-भोजन-रसद साथ ही ढोना पड़ता है। तिब्बत जाने के घाटे १६-१७ फुट ऊँचे हैं, और

† Rockhill कृत Life of the Buddha यह लेख लिखते समय पुस्तक हस्तगत न होने से पृष्ठका निर्देश नहीं किया जा सकता।

* रैप्सन और उनके दो साथियों की पुस्तक Kharoshthi Inscriptions Discovered by sir A M Stein chinese Turkestan देखिये।

प्रवाह लगातार बहता रहा है। इस बात को भी प्रचलित इतिहास लेखक बिलकुल उपेक्षा करते हैं। प्राचीन अनुश्रुत में ईरान (प्राचीन अर्यान, आर्यों का देश) का और पारसीकों का जितना उल्लेख है, आसाम की घाटी में रहने वाले "चीणों" का उससे कम नहीं है। अर्वाचीन काल तक उत्तर पूर्वी दर्रों से जातियों के प्रवाह आते जाते रहे हैं। आसाम की विद्यमान प्रधान जाति अहोम १३ वीं–१४ वीं शताब्दी में ही वहा आई थी। उनके सरदारों के अहोम उपनाम कूकन और बरुआ अब तक जारी है।

फलत हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि भारतीय इतिहास की प्रचलित पुस्तकों में वायव्य सीमाप्रान्त को जहां उचित से कहीं अधिक महत्व दिया गया है, वहाँ उत्तरी और उत्तरपूर्वी सीमा की बड़ी उपेक्षा की गई है। ये दोनों भारी भूले है।

सीमा पार के देशों से भारतवर्ष के सम्बन्ध की विवेचना करने के लिए जहा हमने हिमालय की छानबीन की है, वहाँ उसके सीमान्तर्गत प्रदेशों पर दृष्टि डालना भी आवश्यक है। इस रेल-तार के जमाने से पहले हिमालय का आँचल भी व्यावहारिक दृष्टि से मैदान की शक्तियों की पहुंच से परे था। वास्तव में, प्राचीन काल के सम्बन्ध में, जब कपिलवस्तु, कुशिनगर, पावा और वैशाली आदि में समृद्ध राज्य थे, यह बात नहीं कही जा सकती। किन्तु मुसलमानी जमाने के लिए यह पूर्ण रूप से सत्य है। अकबर से औरंगज़ेब के समय तक वायव्य सीमा प्रान्त में अशान्ति बनी रही, काश्मीर भलेही मुगलों के हाथ में था, किन्तु कांगड़ा जहांगीर

के समय काबू हुआ, और उससे पूर्व का पहाडी प्रदेश प्राय स्वतन्त्र रहा। सरमोर का पहाडी राजा, जिसकी राजधानी आज मैदान से केवल छः घंटे की तांगे की दौड़ पर है, बडी भारी चीज समझा जाता था, और श्रीनगर (गढवाल) का राजा तो मुगल शक्ति का तिरस्कार कर सकता था†। नैपाल की तरफ मुसलमानों ने कभी आंख नहीं उठाई, और भूटान से बख्तियार खिलजी को मुँह की खाकर लौटना पडा था। बगाल के शाहों की शक्ति कूच विहार और सिलहट तक मुश्किल से पहुच पाती थी।

गुरु गोविन्द सिंह ने जब औरंगजेब के विरुद्ध एक क्रान्ति संगठित करनी चाही, वे अपना आधार बिलासपुर से गढवाल तक के पहाडी प्रदेश को ही बनाना चाहते थे। नि सदेह यह विचार उन्हें शिवाजी के क्रान्तिकारी चरित्र से, जिनकी क्रान्ति का आधार सह्याद्रि के मध्यवर्ती दुर्ग और कोंकण का सुरक्षित तट था, मिला होगा। अरवली और बुन्देलखण्ड के पहाडों ने भी मुस्लिम युग के इतिहास में अनेक बार इसी प्रकार का काम किया है। अकबर के मुकाबले में राणा प्रताप तब तक खडे रह सकते थे जब तक अरवली का एक भी किला उनके हाथ में था, चित्तौड़ और उदयपुर जाने के बाद गोघूंदा उनकी शरण था, और उसके भी जाने पर कुम्भलमेर। जब शाही फौजें लौट जातीं वे पहाडों से उतरकर गुजरात के रास्तों पर छापे मारते, फौजें फिर चढ़ आतीं तो पहाडी गढ़ों की शरण लेते।' गुरिल्ला-युद्ध का यही तरीका है। क्रान्तिकारी शक्ति के पास कोई न कोई अच्छा आधार

† मनूची के स्टोरिया दु मोगर के आधार पर।

अवश्य होना चाहिए। औरंगजेब के समय के युद्ध में अरवली ही राजपूतों का आधार था, पर उसके दोनों तरफ मुगल सेना होने से स्थित कुछ भिन्न थी। उसका वर्णन पीछे हो चुका है।

क्या आधुनिक युग में भी भारतवर्ष के पर्वत और जंगलों का कुछ ऐसा उपयोग हो सकता है? क्या कोई शक्ति आज प्रताप और दुर्गादास की तरह अरवली को, शिवाजी की तरह सह्याद्रि को, शेरखा की तरह झाडखंड को या गुरू गोविन्द सिंह की तरह शिवालक को बर्त सकती है? अपने देश का इतिहास पढते समय विचारशील युवकों के मनमें अनेक बार ये प्रश्न उठा करते हैं।

किन्तु अतीत काल से आज तक हालत बहुत बदल गई है। कोंकण आज समुद्र के प्रभुओं का ग्रास है, और घाट के माथे को कुचलती हुई अनेक रेलगाडियां रोज सह्याद्रि के घाटों को पार करती हैं। अरवली और झाडखंड में अब कोई रहस्य छिपा नहीं है। पेशावर से कलकत्ते तक जो राजपथ उत्तर भारतीय मैदान को लांघता है उसमें से अनेक शाखायें फूटकर हिमालय की तरफ बढ़ी हैं। नौशेरा पर काबुल नदी को पार कर दर्गई तक जो लाइन गई है वह इस का पहला नमूना है। तक्षशिला से हजारा जिले में हवेलिया को, वजीराबाद से जम्मू को, अमृतसर से पठानकोट को, जालन्धर से ढाये में तीन तरफ, फिर अम्बाला से शिमला; लक्सर से देहरादून, नजीबाबाद से कोटद्वारा, मुरादाबाद से रामनगर और बरेली से काठगोदाम को जो लाइनें गई हैं, सब इसी श्रेणी की हैं। यही परम्परा पूर्वी छोर तक चली गई है। देश का

चप्पा चप्पा आज सर्वे किया जा चुका है, प्रत्येक जंगल में सरकारी रेंजर है।

यह सब ठीक है। पर इससे यह सिद्ध नहीं हो जाता कि शिवाजी की नीति के लिए आज कोई स्थान नहीं है। आधुनिक यानों की तेज चाल से यदि साम्राज्य-सत्ता को लाभ है तो विप्लवकारियों को भी हो सकता है। सह्याद्रि, विन्ध्याचल और अरवली को निःसन्देह रेलगाडी लाँघ गई है, किन्तु हिमालय के वह चरणों तक ही पहुँच पाई है। हिमालय की मध्य शृङ्खला की शायद आज वही स्थिति है जो मुगल काल में शिवालक की थी। यदि विप्लवकारी शक्ति बडी बडी तोपें भी नहीं पा सकती तो साम्राजिक सेना में भी इन पहाडों पर अपना सब सामान सुगमता से ढोकर नहीं लेजा सकती। हवाई जहाजों की मार से भी मैदान की अपेक्षा जगलों से ढके पर्वत अधिक सुरक्षित होते हैं। हिमालयके अनेक प्रदेशों और तिब्बत में उतारे के अनुकूल पडाव न मिलने से उनका मार्ग और कठिन हो जाता है। वायव्य सीमाप्रान्त की जातियाँ यदि ब्रिटिश सेनाओं की नाकमें दम किये रख सकती हैं तो उत्तरी सीमा के निवासियों का भी वही काम कर सकना अचिन्तनीय नहीं है। वास्तव में आधुनिक वैज्ञानिक साधन सामग्री की अपेक्षा भारतवासियों की निष्क्रियता और निद्रालुता ब्रिटिश शक्ति का दबदबा बनाये रखने में अधिक सहायक है। यह निद्रा टूट जाय तो हिमालय ही नहीं, शायद अरवली, विन्ध्य और सह्याद्रि भी बड़ी बडी घटनाओं के रग स्थल बन जाय।

(८) समुद्र तट

हमारे देश की आधी परिक्रमा पर्वतों ने की है, और शेष आधी समुद्र ने। इस प्रकार भारतवर्ष चारों तरफ से सुरक्षित दिखाई देता है। भोले भाले लोगों का विचार है कि इस प्रकार उत्तर पश्चिम के कुछ दर्रों को छोड़ कर प्राचीन काल में भारत में आने का कोई मार्ग न था, और भारतवर्ष दुनिया से अलग ही था। इस प्रकार का विचार करने वाले लोगों को एक तो यह मालूम होना चाहिए कि हमेशा भारतवर्ष के अन्दर ही आक्रान्ता नहीं आते रहे, भारतीय आक्रांता हो आपके देश से बाहर जाते रहे हैं। और चाहे हम भारतवर्ष पर होने वाले आक्रमणों का वृत्तान्त देखें, चाहे भारतवर्ष से होने वालों का, हमें स्थल की उत्तरी और पूर्वी सीमा और जल की सम्पूर्ण सीमा वैसी अलङ्घ्य नहीं दिखाई देती जैसी बतलाई जाती है।

प्रागैतिहासिक काल से समुद्र के रास्ते सुदूर देशों से भारतवर्ष का व्यापार बना रहा है, दक्षिण भारत का मिस्र, बावेरु (बाबुलबेबिलन) आदि से सम्बन्ध बहुत ही पुराना है। चीन और पूर्वी देशों के साथ सामुद्रिक सम्बन्ध भी उतना ही प्राचीन है। जावा सुमात्रा आदि द्वीपों में आर्य सभ्यता का विस्तार सूचित करता है कि समुद्र की परिखा भारतवासियों के बाहर फैलने में अलङ्घ्य रुकावट नहीं रही।

लेकिन सोलहवीं (विक्रम-) शताब्दी के सामुद्रिक आविष्कारों ने संसार के सुदूर महादेशों से भारतवर्ष का सीधा सम्बन्ध कर दिया है। समुद्र अब उसे संसार के अन्य देशों से केवल अलग करता है, सुरक्षित नहीं करता। तो भी

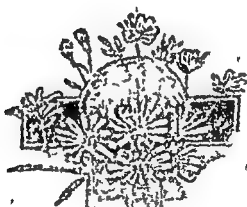
विन्सेन्ट स्मिथ का यह कथन कि भारतवर्ष अब उस शक्ति का सुलभ ग्रास है जो समुद्र की अधिपति हो (The country is now at the mercy of the power which holds the sea) गलत है। यह ठीक है कि कोई युरोपियन या अन्य शक्ति, जिसे समुद्र के रास्ते भारतवर्ष पर आक्रमण करना हो, तब तक इस देश को ले नहीं सकती जबतक वह ब्रिटेन को समुद्र पर नीचा न दिखा ले। किन्तु यह ठीक नहीं है कि उत्तर पश्चिमी दर्रों का सांग्रामिक महत्त्व घट गया है और बम्बई और कराची का उसी हिसाब से बढ गया है (The Strategical importance of the north-western passes has declined as that of Bombay and karachi has risen) बम्बई और कराची का सांग्रामिक महत्त्व जरूर बढ गया है, किन्तु स्थल-मार्गों का महत्त्व भी अभी तक बना हुआ है। नैपोलियन के समय से आज तक उस तरफ से आने वाली युरोपियन सेनाओं के पैरों की आहट ने ब्रिटिश नेताओं को उन्निद्र और चिन्तित किये रक्खा है। युरोपियन शक्तियों में से यदि एक के हाथ में भारतवर्ष के जल मार्ग का पूरा प्रभुत्व हो और दूसरी के हाथ स्थल मार्ग का तो यह बात ठीक है कि जल स्वामिनी शक्ति स्थल-स्वामिनी की अपेक्षा थोड़े खर्च पर और थोड़े कष्ट से भारतवर्ष तक पहुंच सकती है। किन्तु फारिस, अफ़गानिस्तान, तिब्बत, चीन या नेपाल में से यदि कोई देश जापान या युरोपियन देशों की तरह शक्तिसम्पन्न हो, या भारतवर्ष के अन्दर ही कोई शक्ति सिर उठाले और आज जो भारतीय सेना, प्रजा और शस्त्रागार ब्रिटिश स्थल शक्ति के स्थम्भ बने हुए हैं वे उस शक्ति के हाथ में आजाँय, तो उसके साथ ब्रिटेन को स्थल में ही अपना जोर आजमाना होगा।

इस समय भारतवर्ष की स्थल शक्ति भी इंग्लैंड के हाथ में है इस बात का भले ही उस समय प्रभाव हो उसकी जल शक्ति उस समय कुछ न बना सकेगी। जल के प्रभु कोंकण, केरल, कलिंग और कारोमण्डल तट पर कब्जा कर सकते हैं, बंगाल, सिन्ध और गुजरात के तट को हथिया सकते हैं, किन्तु तट की प्रभुता से देश की प्रभुता नहीं मिल सकती। अन्त को उन्हें स्थल वाली शक्ति का मुकाबला करना होगा, और कमजोर होने की दशा में कोंकण के आगे घाटों पर ही रुक जाना होगा। भारतवर्ष के भाग्य का निर्णय बड़े बड़े स्थल युद्धों से ही होगा। कारण स्पष्ट है। भारतवर्ष जापान या इङ्गलैंड जैसा देश नहीं है जिसके तट के अन्दर स्थल विस्तार कुछ भी न हो। यदि कोई शक्ति भारतवर्ष के सारे समुद्र तट पर पचास मील अन्दर तक कब्जा कर भी ले तो सारे देश पर प्रभुता पाने के लिए उसे आगे बढ़ कर स्थल में अपना बल प्रकट करना होगा। यदि ब्रिटेन की भारतीय स्थल शक्ति की बुनियाद कच्ची हो जाय तो उसके साम्राज्य का महल केवल जहाजों के मस्तूलों पर खड़ा नहीं रह सकता। ध्यान रहे कि वायुयानों से किसी देश में आतंक फैलाया जा सकता है, देश का विजय नहीं किया जा सकता। जल युद्ध और आकाश युद्ध की कलाओं में पूर्ण उन्नति हो चुकने पर भी भारतवर्ष का भाग्य अभी तक स्थलशक्ति के ही हाथ में है।

डा० राधाकुमुद मुकर्जी की प्रसिद्ध पुस्तक "भारतवर्ष की बुनियादी एकता (The Fundamental unity of India) को "well written, learned and accurate) सुलिखित विज्ञतापूर्ण और शुद्ध)" स्वीकार कर के भी डा० विन्सेन्ट स्मिथ उसको तह में कोई राजनैतिक लक्ष्य (political purpose)

देखते हैं। क्या डा० विन्सेन्ट स्मिथ के वैज्ञानिक भेस कोई ऐसा ही राजनैतिक राग नहीं है? क्या ब्रिटेन शक्ति की शेखी बघारने में भारतीय नवयुवकों के दयों पर आतंक जमाने और उनको उठने से पहले देने का अभिप्राय नहीं है?

वास्तव में यह जल शक्ति भी इतनी भयङ्कर नहीं है दिखलाई जाती है। एम्डेन जहाज ने गत महायुद्ध के उनकी असलीयत पर बहुत कुछ रोशनी डाली थी।



पढ़ने से पहले इन अशुद्धियों को सुधार लीजिए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
क	६	अभाग	आभास
क	१२	दारू	द्वारू
ख	६	भवन	मनन
ग	५	यहाँ	यह
च	?	होगी	होती।
च	१५	फरोज	फीरोज
२४		तीसरे पृष्ठ का फुटनोट चौथे के नीचे तथा चौथे का तीसरे के नीचे पढ़िये।	
४	१०	धर्म	उसके धर्म
६	१४	प्रतिबन्ध का भाव	प्रतिबन्धकाऽभाव
७	१६	mesozoicur	mesozoic or
७	२१	यहा	यहा यहीं
७	२३	(अनुवादका)	अनुवादका
६	२२	क्रिया।	नहीं क्रिया।
१०	३	उपत्य	उपत्यका
१०	५	शाहीवाल, माटगुमरी,	साहीवाल= माण्टगुमरी,
१०	८	जगल	जांगल
११	७	जौवन	जौपपन
११	१५	इनके	इसके
१२	१५,१६	श्रृंखला	शृङ्खला
१४	८	भारतीय	उत्तर भारतीय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१४	८	बोलनि	बोलान
१४	१६	सिन्धु नदी"	सिन्धुनद'
१४	१८	सुक	क्रुक
१४	२३	आफ	आमू
१५	२४	उत्तरपश्चिमी	उत्तर-पश्चिम
१६	१७	ओहिक	आहिन्द
१६	१८	पर	पार
१६	२१	प्रदेश में	प्रदेशमें)
१७	६	डेराजात	डेराजात
१७	१४	गाडी सिन्धु	माडीसिन्ध
१७	१५	सिन्धु	सिन्ध
१८	५	जेहलम पर	जेहलम पार
१६	११	आक्रा	अक्ष
२०	७	पूरब	पूर्व
२२	१	मुड	मुद्ग
२२	२४	हजारों	नागो
२३	२४	ताम्रलिप्त	ताम्रलिप्ति
२५	१४	सिन्धको	सिन्ध का
२६	२०	iriemo	aims
२६	२३	sindia	scindia
२७	१	sighters	sightseer
२७	५	सामाजिक	सामरिक
२७	१४	शिन्धे	शिन्द्ये
२८	१०,१५	शेरकोट	शोरकोट
२६	३	जाकता	जा सकता
२६	१७	दुजदाय	दुजदाप

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३०	५	सामुद्रिक	वह सामुद्रिक
३०	११	चर्चा	चर्या
३०	१३	वन्ध्य	वन्ध्या
३०	१६	सकर्म	सन्दर्भ
३१	२०	या।	था
३२	५	मुकर्मर	मुकर्रर
३२	६	का	का झंडा
३२	११	झंडाको	की
३४	१६	आक्रान्ती	वह
३५	१५	द्रह्यु	द्रुह्यु
३५	२५	पूर्व	तृतीयपर्व
३५	२६	(तृतीय)	×
३६	८	कास्तव	कारूप
३६	२१	चित्तौड	(चित्तौड
३६	२२	"नगरी"	"नगरी")
३७	१०	यवन	यवना
३८	१८	नवोत्थित	एक नवोत्थित
३६	२३	Erythor ısan	Erythraean
४०	१०	गुजरात	गुजरात का
४०	१६	मही	मट्टी
४०	१६	की तरह काली मही	की काली मट्टी
४१	३	शिखरचय	शिखरत्रय
४१	१३	आवर्त्त	आनर्त्त
४१	१६	है हम	हैहय
४१	१६	अनुर्द	अर्बुद
४३	५	मालवा	मालवा के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१४	८	बोलनि	बोलान
१४	१६	सिन्धु नदी"	सिन्धुनद'
१४	१८	सुफ	झुफ
१४	२३	आफ	आमू
१५	२४	उत्तरपश्चिमी	उत्तर-पश्चिम
१६	१७	ओहिक	आहिन्द
१६	१८	पर	पार
१६	२१	प्रदेश में	प्रदेशमें)
१७	६	डेराजात	डेराजात
१७	१४	गाडो सिन्धु	माड़ीसिन्ध
१७	१५	सिन्धु	सिन्ध
१८	५	जेहलम पर	जेहलम पार
१६	११	अक्ष	अक्ष
२०	७	पूरब	पूरब*
२२	१	मुद्र	मुद्ग
२२	२४	हजारों	गागों
२३	२४	ताम्रलित	ताम्रलिप्ति
२५	१४	सिन्धको	सिन्ध का
२६	२०	ariems	aims
२६	२३	sindia	scindia
२७	१	sighters	sightseer
२७	५	सामाजिक	सामरिक
२७	१४	शिन्धे	शिन्द्ये
२८	१०,१५	शेरकोट	शोरकोट
२६	३	जाकता	जा सकता
२६	१७	दुजदाय	दुजदाप

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३०	५	सामुद्रिक	यह सामुद्रिक
३०	११	चर्चा	चर्या,
३०	१३	वन्ध्य	वन्ध्या
३०	१६	सकर्म	सन्दर्भ
३१	२०	था।	था
३२	५	मुकर्मर	मुकर्रर
३२	६	का	का झंडा
३२	११	झंडाको	को
३४	१६	आक्रान्ती	यह
३५	१५	द्रह्यु	द्रुह्यु
३५	२५	पूर्व	तृतीयपर्व
३५	२६	(तृतीय)	×
३६	८	कास्तव	कारूप
३६	२१	चित्तौड	(चित्तौड
३६	२२	"नगरी"	"नगरी")
३७	१०	यवन	यवना
३८	१८	नवोत्थित	एक नवोत्थित
३६	२३	Erythorasan	Erythraean
४०	१०	गुजरात	गुजरात का
४०	१६	मही	मट्टी
४०	१६	की तरह काली मही	की काली मट्टी
४१	३	शिखरचय	शिखरत्रय
४१	१३	आवर्त्त	आनर्त्त
४१	१६	है हम	हैहय
४२	१६	अर्बुद	अर्बुद
४३	५	मालवा	मालवा के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
८६	१८	प्रकृत	प्रकृति
८६	२१	सिरतोला	सिनतोला
९०	४	मकनानसे आराकान	मकरान से अराकान
९०	१५	बनया	बरमा
९१	६	और	, और तिब्बत
९१	१०	चाक	याक
९१	१६	लासट	लासा
९३	१६	है (gon	(gon
९३	२०	बोलार	बोलान
९३	२६	कुाभ क्रम	क्रभा क्रमु
९५	१५	मारकन्द मार्ग	यारकन्द मार्ग को
९५	२४	chinese	in Chinese
९६	१३	उद्धृत्	उद्धृत
९७	२	अनुश्रु त	अनुश्रुति
९७	८	कूकन	फूकन
९८	३	स्थित	स्थिति
९८	२३	कोट द्वारा	कोट द्वार
१००	११	सेना में	सेनायें
१०१	६	ही आपके	भी अपने
१०१	१६	बावुलबेबिलन	बाबुल = बेबिलन
१०३	४	कारेमण्डल	कारोमण्डल
१०३	२३	India)	India)"
१०३	२४	accurate) सु	accurate (सु
१०३	२५	स्मिम	स्मिथ
१०४	४	हृश्यों	हृदयों
१०४	६	इतनी	उतनी

इसी लेखक की कलम से

भारतवर्ष में

जातीय शिक्षा



राष्ट्रीय शिक्षा के प्रश्न की जैसी शृंखला बद्ध विवेचना इस पुस्तक में है वैसी आप और कहीं न पा सकेंगे। पुस्तक की छपाई अच्छी नहीं हुई, पर उसके विचारों की कीमत के मुकाबिले में गलतियाँ ठीक करने का कष्ट न के बराबर है। देखिये धुरन्धर आलोचक क्या कहते हैं—

(१) ग्रन्थ की वाक् शैली बहुत अच्छी है। युक्ति और उक्ति दोनों हृद्य हैं। मुझे आशा है कि आप के द्वारा हिन्दी साहित्य का एक अति उपयोगी अंग सम्यक् परिष्कृत होने का सौभाग्य प्राप्त करेगा।

—श्रीधर पाठक

(2) C/o AMERICAN EXPRESS Co,
NEW YORK CITY
Sept 2, 1920

My dear prof Vidya alankar,

Thanks very much for your kind letter I have received your book and have read it from

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
८६	१८	प्रकृत	प्रकृति
८६	२१	सिरतोला	सिनतोला
९०	४	मकनानसे आराकान	मकरान से अराकान
९०	१५	बनया	बरमा
९१	६	और	और तिब्बत
९१	१०	चाक	याक
९१	१६	लासट	लासा
९३	१६	है (gon	(gon
९३	२०	बोलार	बोलान
९३	२६	कुाभ क्रम	क्रमा क्रमु
९५	१५	मारकन्द मार्ग	यारकन्द मार्ग को
९५	२४	chineso	in Chinese
९६	१३	उद्धुत्	उद्बुद्ध
९७	२	अनुश्रु त	अनुश्रुति
९७	८	कुकन	फूकन
९९	३	स्थित	स्थिति
९९	२३	कोट द्वारा	कोट द्वार
१००	११	सेना में	सेनायें
१०१	६	ही आपके	भी अपने
१०१	१६	बाबुलवेबिलन	बाबुल = बेबिलन
१०३	४	कारेमण्डल	कारोमण्डल
१०३	२३	India)	India)"
१०३	२४	accurate) सु	accurate (सु
१०३	२५	स्थिम	स्मिथ
१०४	४	ह्रयों	हृदयों
१०४	६	इतनी	उतनी

इसी लेखक की कलम से

भारतवर्ष में

जातीय शिक्षा



राष्ट्रीय शिक्षा के प्रश्न की जैसी श्रृंखला-बद्ध विवेचना इस पुस्तक में है वैसी आप और कहीं न पासकेंगे। पुस्तक की छपाई अच्छी नहीं हुई, पर उसके विचारों की कीमत के मुकाबिले में गलतियाँ ठीक करने का कष्ट न के बराबर है। देखिये धुरन्धर आलोचक क्या कहते हैं—

(१) ग्रन्थ की वाक् शैली बहुत अच्छी है। युक्ति और उक्ति दोनों हृद्य हैं। मुझे आशा है कि आप के द्वारा हिन्दी साहित्य का एक अति उपयोगी अंग सम्यक् परिष्कृत होने का सौभाग्य प्राप्त करेगा।

—श्रीधर पाठक

beginning to end Your emphasis on the Cultural value of fine arts deserves wide recognition among our intellectuals I admire your categorical statement with regard to the function of education, viz, that it is to help in the making of "creators"

sincerely
— Benoy Kumar Sarkar

(3)

The author of this treatise takes a very sane and wide view of National Education He wrote it long before the present movement Some of the suggestions are worthy of our serious consideration The author was at the Gurukula for 13 years but his views are not blinded by any sectarian spirit The style of the book is simple The author has coined some new words This book will amply repay perusal

—Modern Review for June 1921

मिलने का पता—
हिन्दी भवन, लाहौर।

असहयोग आन्दोलन की शव परीक्षा

तथा

अन्य लेख

अर्थात् प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार द्वारा पिछले ५ साल में मुकट नाम से या श० प० स० नाम से लिखे गये प्रकाशित और अप्रकाशित मौलिक राजनैतिक लेखों का सग्रह।

विशद, गहरी, विचार शैली, ओजस्विनी भाषा और मनोरंजक विवाद पद्धति में ये लेख अद्वितीय हैं। सग्रह में मुख्य मुख्य लेख निम्न लिखित होंगे —

१—**भारत वर्ष मे क्रान्ति की लहर**—अर्थात् रौलट ऐक्ट बनने से पहले लिखी गई रौलट रिपोर्ट की आलोचना।

२—**सत्याग्रह के सिद्धान्त की समीक्षा**—अर्थात् असहयोग आन्दोलन से पहिले लिखी गई हिंसा और अहिंसा वाद की पूर्ण दार्शनिक मीमांसा।

३—**अफगान हौआ**—एक अप्रकाशित लेख।

४—**असहयोग आन्दोलन की आलोचना**—बारडोली निर्णय के ठीक बाद लिखे गये इस लेख में असहयोग आन्दोलन के प्रत्येक पहलू पर पूरा विचार है।

५—हाँ ! हम मूर्ति पूजक हैं—एक भाव पूर्ण लेख।

६—राष्ट्रीय ठहराव—अर्थात् शर्तें पूरी हों तो देशभक्ति नहीं तो देश द्रोह। लेख की आकर्षकता शीर्षक से प्रकट है।

७—अकाली आंदोलन की नाड़ी परीक्षा—हाल में लिखा गया एक अप्रकाशित लेख।

८—असहयोग आंदोलन की शवपरीक्षा—शीघ्र लिखा जायगा।

अगस्त सितम्बर तक पुस्तक प्रकाशित होगी। पृष्ठ संख्या लगभग १५०। प्रकाशित होने से पहिले जो सज्जन अपना नाम ग्राहकों में लिखा देंगे उन्हें तीन चोथाई दाम पर मिलेगी।

मिलने का पता—

हिन्दी भवन,

लाहौर।

भारतीय इतिहास की कहानियाँ

हमारे बालकों और बालिकाओं को अपने देश का ठीक ठीक इतिहास पढने के लिए एक भी पाठ्य पुस्तक हिन्दी में नहीं है, यह कितनी लज्जा की बात है। सरकारी स्कुलों में इतिहास की शिक्षा की जो दुर्गति होती है वह किसी से छिपी नहीं है। इसी कमी को देखते हुए यह बालोपयोगी पुस्तक लिखने का विचार किया गया है जिसमें ४० मनोरंजक कहानियो में भारत वर्ष के इतिहास का पूरा ढांचा आजायगा।

जातीय शिक्षा का संगठन

राष्ट्रीय शिक्षा के महत्व को लग भग सभी देशप्रेमी मानते हैं, पर उसका व्यावहारिक रूप में सगठित करने का प्रश्न बडा ही विकट है। इसी संगठन के गहरे सिद्धान्तों पर इस पुस्तक में विचार होगा। इस विषय के एक लेख पर प्रो० विनय कुमार सरकार ने इस प्रकार सम्मति लिखी थी—

C/o American Express Co Berlin
14 Jan 1922

सविनय निवेदन,

प्रभा में आप के लेख पढकर युवक भारत की स्वाधीन चिन्ता के लहर में मैं आ पहुचा। "हमें सर्वथा नई वस्तु और नई पद्धति की रचना करनी है" आप की इस राय पर प्रत्येक हिन्दोस्थानि का ध्यान देना चाहिये, कम से कम शिक्षकों को।" बगाल, गुजरात और महाराष्ट्र जीवित सत्ताएं हैं। पूर्वी बगाल और बम्बई इलाका निर्जीव चीजें हैं"— इस मत पर

खयाल रखने से ही पक्का राष्ट्र विज्ञान बन सकेगी। धन्यवाद।

विनीत—

श्री विनयकुमार सरकार।

ये दोनों पुस्तकें करीब एक वर्ष में हिन्दीभवन से प्रकाशित होंगी।